● हमारे प्रकाशन ●

१.	भेदज्ञान	२)
२.	पचलब्धि	१|||)
३.	तत्त्वार्थसूत्र सटीक	१।)
४.	जिन सिद्धान्त	१)
५.	गुणस्थान	१)
६.	श्री भक्तामर	१)
७.	दृष्टि दोष	॥-)
८.	तत्त्वसार	।=)
९.	जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	।-)
१०.	निमित्त	=)
११.	पंचभाव	=)
१२.	गुरु का स्वरूप	=)
१३.	देव का स्वरूप	-)
१४.	शास्त्र का स्वरूप	-)
१५.	योगसार पद्यानुवाद	-)
१६.	आत्मस्मरण	।)
१७.	तत्त्वसार (अँग्रेजी में)	|||)
१८.	श्री पुरुषार्थ सिद्धोपाय	॥=)

छप रही हैं !

(१) पंचास्तिकायः (२) देव भक्ति

अँग्रेजी में अनुवाद :

(१) दृष्टि दोष (२) पंचलब्धि

मिलने का पता :—

दिगम्बर जैन मन्दिर,
धूलियागंज,
आगरा

जैन दर्शन विद्यालय
चाकसू का चौक,
जयपुर (राजस्थान)

दो शब्द

इस "अराधना" नाम की पुस्तक मे भगवन्त आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी रचित श्री "पंचास्तिकाय" श्री "समयसार" श्री "प्रवचनसार" श्री "नियमसार" का पद्यानुवाद छपाया गया है। जो जीव इनका भाव से शरण लेगा वही जीव अनादि अज्ञान का वमन कर डालेगा इसमे शंका नही है।

नित्य पाठ करने के लिये महान उपयोगी है, इनका पाठ करने से एक दफे जीव संसारी दुख भूल जाता है इतना नही परन्तु सच्चा सुख का अनुभव भी कर सकता है।

जिज्ञासु जीवो का आत्मकल्याण कैसे हो इस भावना से ही इसको प्रकाशित कराया गया है और कोई ख्याति लाभ की अभिलाषा नही है।

जबतक ज्ञान की महिमा नही आवेगी तबतक जीव ज्ञान उपार्जन के लिये पुरुषार्थ भी करता नही है। और जब ज्ञान की महिमा आवेगी तब ज्ञान दान देने की भावना उत्पन्न सहज हो जायेगी। ज्ञान दान से उत्तम ज्ञान लोक मे नही है। समयसार मे भी तो ज्ञान की महिमा है, और क्या है। यदि वहा ज्ञान गगा न बहे तो यथार्थ मे समवसरण की कोई कीमत मोक्ष मार्ग मे नही है। ज्ञान दान उत्तम दान है, क्योकि ज्ञान दान प्राप्त करने से जीव अनन्त भव का जनम मरण नाश कर स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है।

यह पद्यानुवाद श्रीयुत सागरचन्द जी बडजात्या लश्कर निवासी ने किया है। उनका परिचय मुझको आज से आठ वर्ष पहले हुआ था, वह उत्साही तथा जिज्ञासु आत्मा है। अपनी छोटी उमर मे ऐसे महान ग्रन्थ का पद्यानुवाद कर जिज्ञासु जीवों का उपकार किया है। अनुवाद मे गाथा के अनुकूल भाव रखने की खूब सावधानी रखी गई है, तथापि छद्मस्थ जीवो मे गलती होना. संभव है, ऐसी कोई गलती हो तो बतलाने की कृपा करे।

—ब्रह्मचारी मूलशंकर देसाई।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	५	क्षिप्त	क्षिप्र
६	६	दशर्णा	दर्शन
१६	८	न	नित
१७	१०	सा	सो
१९	१९	मुन्ये	मुन्चे
२१	२	जव	वन
३२	२	वरवान	वखान
३३	१	नौकर मान	नो करमान
३३	४	ना हि	नाँहि
३३	५	करै दरवहु	करै न दरवहु
३४	४	वरवान	वखान
३५	श्लोक संख्या २२० से २२७ के वजाय १२० से १२७		
३७	३	कम	कर्म
३८	१९	विषम	विपय
४२	१२	रोगादिकं	रागादिक
४९	१५, १७	अधव सान	अघवसान
५२	१	अप्रतरवानहु	अप्रतखानहु
५२	५	अपचरवान	अपचखान
५३	८	अरवेद	अखेद
५३	१२	छे दिया	छेदिया
५४	१	अपराघ	अपराधि
६०	१९	रच	रंच
६२	१६	न्नू	जू
७०	१३	की	को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७४	११	हा	हो
७५	८	अमरण	आमरण
७६	६	प्रतक्षदिभि	प्रतक्षादिभि
७६	१७	निज	जिन
७९	५	परिणतमित	परिणमित
८१	१६	उन्धव	उद्भव
८२	१९	शेप	रोप
८३	१४	निर्वंध	निर्वन्ध
८३	१८	कुश्रितु	कुश्रुति
८३	१९	मुक्त	युक्त
८५	५	असर	अरस
८८	१३	कश	केश
९१	७	उपाधि	उपधि
९३	७	त	न
९४	१३	गहा	गहो
९५	१०	जा	जो
९७	९	उनन्यास	उनन्चास
१०३	७	सुचरितहु	सुचारितहु
११०	१७	राग	भाव
११६	१३	वध	वंध

———



नमो अनेकान्ताय

श्री पंचास्तिकाय

का

हिन्दी पद्यानुवाद

कवि प्रशस्ति

वीतराग को नमन कर, नित नमूं सिद्धराय।
वंद गुरु निरग्रंथ को, कुन्द कुन्द ऋषिराय ॥ १ ॥
पंचास्तिकाय जिन रचा, टीका गुरु जय सेन।
ब्रह्मचारी शीतल को, देश भाष उन वेन ॥ २ ॥
लख ताको 'सागर' भाव, जागे अंतर जोय।
हो कवित्त मूल श्लोक, तो हित बहु जन होय ॥ ३ ॥

मूल श्लोक पद्यानुवाद

हित मित मिष्ट वचन कहें, नमें इन्द सत शीस।
जित भव धरें अनंत गुण, प्रणमूं जिन जगदीश ॥ १ ॥
चो गति नाशक मोक्षदा, श्रमण सु मुख उदगार।
सोहि समय वरणूं यथा, शीश नवा पद सार ॥ २ ॥

सामान्य अधिकार

समूह संज्ञा, है समय, दरव पाँच की रास।
सोहि जिनवर लोक कहा, वहिर अनंत अकास ॥ ३ ॥

पुद्गल जीव नंतानन्त, इक नभ धर्म अधर्म ।
निश्चय निज सत्ता अभिन, बहु प्रदेशी मर्म ॥ ४ ॥
विविध गुण पर्याय सहित, हैं वे अस्ति सुभाव ।
रचा त्रिलोक उनसे यह, अस्तिकाय तिन गाव ॥ ५ ॥
अस्तिकाय पलटाय ये, काल हेतु के साथ ।
त्रैकालिक भाव परिणित, नित रह दरव कहाथ ॥ ६ ॥
अन्योन्य प्रवेशे ये, और देय अवकाश ।
सदा परस्पर मिलत हू, हो न सुभाव हिराश ॥ ७ ॥
सत्ता विविध सरूप इक, रहत सबहि दरवाद ।
सप्रतिपक्ष अनत दशा, नियत भंग उत्पाद ॥ ८ ॥
द्रवण करे पावे जो, निज सुभाव परयाय ।
पै है अभिन सत्ता से, सोहि द्रव्य कहाय ॥ ९ ॥
उत्पाद थिति व्यय सहित, है सत लक्षण वान ।
वा जो गुण पर्याय मय, दरव कहा भगवान ॥ १० ॥
उपजै विनशै दरव नहि, है जु अस्ति सदभाय ।
ध्रुव व्यय उत्पाद करे, उस ही की परयाय ॥ ११ ॥
परयाय विन दरव नही, दरव न विन वह होय ।
अभेद रूप भाव उभय, मुनिगण कहा जु सोय ॥ १२ ॥
संभव न दरव गुण विना, गुण न दरव विन होय ।
अभिन्न भाव इम तातें, कहा उभय में जोय ॥ १३ ॥

द्रव्य जु खलु आदेश वश, सप्त भंग प्रमाण।
स्यात अस्ति नास्ति जु उभय, अवक्त सु तिभेदान॥१४॥
वस्तु नाश होवे नहीं, नहि अवस्तु उत्पाद।
निज गुण पर्यायहु करे, उदय नाश दरवाद॥१५॥
जीवादि सत पदहु जिया, गुण चेतक उपयोग।
नर नारक देव तिर्यक, ये परयाय सु जोग॥१६॥
मनु देह से नष्ट जिया, होय देव वा कोय।
उदय नाश जिव दरव का, उभय वने ना जोय॥१७॥
वही अवतरा जो मरा, न जिव जन्म ना नाश।
खलु नर सुर पर्याय का, उदय अस्त तँह भाश॥१८॥
यों न नाश सत जिय दरव, असत उदय ना होय।
सुर मनु गति नाम करमहु, तावत थिति उन जोय॥१९॥
ज्ञानावरणादिक भाव, सुष्ठु अनुवद्ध जीव।
अभूत पूर्व खपाय उन, होय जु सिद्ध सदीव॥२०॥
इम जिय गुण परयाय सह, भ्रमण करत जग माँहि।
उदय नाश भाव अभाव, अभाव उदय कराहि॥२१॥
जीव जु पुद्गल काय नभ, अस्ति काय जो शेष।
सत्ता सह अकृतिम खलु, लोक हेतु उन वेष॥२२॥
सुभाव सत्ता मय रखे, जिव पुद्गलादि जोय।
उन परिणति कारण वने, काल पदारथ सोय॥२३॥

पंच वरण रस पंच विन, गंध फरस अठ टाल ।
अगुरु लघु मय रूप विना, गुण वर्तन है काल ॥ २४ ॥

समय निमिष काष्ठा कला, घड़ी वने दिन रात ।
माँस अयण संवतादिक, काल परा-धीनात ॥ २५ ॥

चिर क्षिप्त का व्यवहार, वने न विन परिमाण ।
हो न परिमाण पुगल विन, काल पुगल से जान ॥ २६ ॥

इति सामान्य अधिकार

अथ जीवास्तिकाय अधिकार

जियक चेतक उपयोगी, प्रभु कर्ता यह जीव ।
भोक्ता तन मात्र अमूर्त, कर्म संयुक्त थीव ॥ २७ ॥

सो करम मलहु मुक्त हो, उरध लोक के अंत ।
सर्व ज्ञान दर्शी लह, जु सुख अतींद अनन्त ॥ २८ ॥

सर्व दर्शी सर्वज्ञहु, आपहि हो जिय संत ।
पावे सुख सहज अमूर्त, अव्यावाध अनन्त ॥ २९ ॥

भूत जिया रु जीवेगा, जीवत खलु चो प्राण ।
आयु इन्द्री उसाँस वल, प्राण जीव के जान ॥ ३० ॥

अगुरु लघु गुण अनंत सव, तिनहु जीव परिणात ।
प्रदेश असंख, भेदकर; जग अखिल व्यापात ॥ ३१ ॥

कुदर्श कषाय योग सह, बहु संसारी जीव ।
सिद्ध सु उन बिन जानिये, व्यापें न कित कदीव ॥ ३२ ॥

पड़ा पय पद्म राग मणि, करे जु पय परकाश ।
तिम परकाशे तन जिया, रह तिष्ठ तिस पास ॥ ३३ ॥

रह इक तन हो न उस मय, है जु वही सब थान ।
रागादि अधवसान सह, भमै रज मल मलान ॥ ३४ ॥

जिय असुध सुभाव सिध नहि, ना जिय पूर्ण अभाव ।
भिन्न देह से सिद्ध वे, वचन अगोचर थाव ॥ ३५ ॥

उत्पन भये न काहु से, काज सिद्ध इम नाँहि ।
करै न उत्पन काहु को, कारण भी नहि भाँहि ॥ ३६ ॥

नित अनित शून अशूनत, बिन सत्ता ना होय ।
विज्ञान अविज्ञान सिध, भव अभवपनहु सोय ॥ ३७ ॥

ज्ञान, करम, अर करम फल, इक इक जीया राश ।
भाव चेतना तीन विधि, इम वेदत इन जाश ॥ ३८ ॥

त्रस काय करम फल विदे, ज्ञान जीव बिन प्राण ।
थावर काय जु करम फल, खलु वेदे सब थान ॥ ३९ ॥

ज्ञान दर्शन उपयोगहु, वरने दो परकार ।
अभिन जीव से जानिये, जुदे न कोई कार ॥ ४० ॥

मति सुत अवधि मनः पर्यय, केवल पच सुज्ञान ।
कुमति कुश्रुत विभंग सह, भेद आठ इम जान ॥ ४१ ॥

चक्षु अचक्षु अवधि अरू, विषय अनत अन अंत ।
केवल संज्ञा जानिये, चतु दर्शण ये संत ॥ ४२ ॥
बुध वहु भेद ज्ञान से, सके न भिन किह कार ।
यों त्रिविध रूप जिय दरव, वरना ज्ञानी द्वार ॥ ४३ ॥
भेद उपलब्धि भावना, मय उपयोग सु तीन ।
चतु भेदहु मति ज्ञान जु, सह दर्शण वह चीन ॥ ४४ ॥
बुध कहें श्रुत ज्ञान पुनि, वस्तु भाव मय वेद ।
लब्धि उपयोग भावना, नय जान तसू भेद ॥ ४५ ॥
देश परम रु सर्व अवधि सगुण गहो खलु तीन ।
अर देश अवधि नियम कर, भवहु विषे पुनि चीन ॥४६॥
ज्ञान ऋजुमति विपुल मती, है मन पर्यय भेद ।
संयम से उपयोग में, मुनि जु अपरमत वेद ॥ ४७ ॥
ज्ञेय निमित केवल नहीं, ज्ञान सुतहु मत जान ।
ज्ञानाज्ञान केवलि नहीं, मात्र ज्ञान पिछान ॥ ४८ ॥
दुर्नय रु दुष्प्रमाण हो, ज्ञेय परतीत तात ।
भावावरण अज्ञान जु, अविरत उदय मिथात ॥ ४९ ॥
गुण अर द्रव्य परस्पर, होंय भिन्न जग जोय ।
अनतपन करें दरव वा, वने नाश उस सोय ॥ ५० ॥
हे एकत अभिन दरव गुण, चहे न भिन्नत भेद ।
तसु विपरीत सुभाव भी, गहे न निचयी वेद ॥ ५१ ॥

व्यपदेश विषय आकार, संख्या ये बहु रीत ।
होय एकत्व भिन्नत्वहु, द्रव्य गुणों में मीत ।। ५२ ।।

करे ज्ञान ज्ञानी ज्यों, धन धनिक को भिरात ।
अभेद भेद यु कह सकें, उभय सु बुध वरनात ।। ५३ ।।

जो होय भिन्न परस्पर, ज्ञानी रु तसु ज्ञान ।
तो बने अचेतन उभय, किया जिनेश बखान ।। ५४ ।।

निपट भिन्न हो ज्ञान जिय, ज्ञानी जु न समवाय ।
एकत साधै गुण गुणी, वच अज्ञानो भाय ।। ५५ ।।

यही अयुतसिध अभिन है, रह सह सो समवाय ।
वरना इम अयुत सिध पन, द्रव्य तसु गुण भाय ।। ५६ ।।

फरस वरन रस गंध खलु, करे परमाणु वास ।
होय जु दरव अभिन्न पै, करे भेद परकास ।। ५७ ।।

ज्ञान दर्शण जिय निवद्ध, अभिन जीव से जोय ।
नाम आदि से भिन्न वे, ना सुभाव खलु सोय ।। ५८ ।।

जीव भाव कर शांत जिय, अनादि निधन अनंत ।
पुनि सत्ता कर अनत है, इम पच गुण मुख संत ।। ५९ ।।

यों सद नाश असद उदय, कहा जीव जिनराय ।
पै परस्पर विरोध मय, तोहु अविरुद्ध भाय ।। ६० ।।

नर नारक देव तिर्यक, प्रकति नाम करमान ।
करै नाश सदभाव का, उदय असद का जान ।। ६१ ।।

भाव औदिक औपशमिक,क्षायक मिश्र पिछान ।
पारिणामिक सह गुण जिय,विछित वहू भेदान ॥ ६२ ॥
कर्म वेदता जिया यह, करे जोय परिणाम ।
कर्ता उससे उसी का, शासन कहा सुठाम ॥ ६३ ॥
भाव औदिक औपशमिक,क्षायिक मिश्र पिछान ।
हों न कर्म विन वे जिया,विधि कृत इम सुजान ॥ ६४ ॥
हो किम कर्ता करम जिय,विधि कृत हो जु भाव ।
करे न अन्य कुछ जिय यह,छोड़ भाव निज धाव ॥ ६५ ॥
जिय भाव का कर्म निमित्त,भाव कर्म का जान ।
खलु कर्तापन उभय नही,ना विन कर्ताहु भान ॥ ६६ ॥
निज सुभाव को करत जिय,कर्ता हो निज भाव ।
कर्ता पुदगल वह नहीं, मान वचन जिन राव ॥ ६७ ॥
करे द्रव्य कर्मत सुविधि,करम आप सु सुभाव ।
रागादि कर्म भाव से, करे जिवहु निज भाव ॥ ६८ ॥
जो करम-करम को करे, आतम करे सु आप ।
जिय वेदे किम करम फल,दे करम फल किमाप ॥ ६९ ॥
भरा ठसा ठस लोक यह, स्कन्ध पुदगल द्वार ।
थूल सूक्ष्म वे सब तरफ, विविध अनंत अपार ॥ ७० ॥
करे जिय जब राग भाव,पुद्गल आप सुभाव ।
अवगहें गाढ़ परस्पर, द्रव्य करम मय थाव ॥ ७१ ॥

विविध बिन करी ओर से, रचना पुदगल खंध ।
जिम दीसे तिम जानिये, होय करम का बंध ॥ ७२ ॥

बंधे जु गाढ़ परस्पर, जीव पुदगल काय ।
देंय सुख दुख विछित काल, तबहि जीव वेदाय ॥ ७३ ॥

जिय भाव संयोग करम, इम करता खलु आप ।
तिम जिव चेतक भाव पै, वेदे विधि की ताप ॥ ७४ ॥

कर्ता भोगता हो जिय, निज भावन के द्वार ।
मोह सन्छन भरमे इम, इह जग पार अपार ॥ ७५ ॥

जिन कथ से मग सुविधि लह, चले ज्ञान अनुसार ।
धीर उपशम छीन मोह, जाय मोक्ष के द्वार ॥ ७६ ॥

उपयोग मय जु इक महत, वही जीव दो भेद ।
तिलखन चो चतु गति भमै, भाव पंच पच वेद ॥ ७७ ॥

छह त्रिधि षट दिश गमन ते, भँग सात सिध सात ।
अठ आश्रय नव अर्थ में, दस जु ठौर दस पात ॥ ७८ ॥

छुटा प्रकति थिति बंध जिय, प्रदेश सब अनुभाग ।
उरध जाय वह शेष पुनि, तज विदिशा गति लाग ॥ ७९ ॥

जीवास्तिकाय नाम अधिकार समाप्तः

अथ पुदगलास्तिकाय अधिकार

खंध-खंध देश पदेश, सहित परमाणु—भाय ।
चार भेद इम यों कहे, जान जु पुद्गल काय ॥ ८० ॥

खंध पिन्ड बहु परमाणु,जान सकल अध देश ।
देश आध प्रदेश है, अखंड़ अणु लघु वेश ॥ ८१ ॥

खंध सूक्ष्म बादर हुए, पुदगल कह विवहार ।
रचा त्रिलोक जिन से यह,तिनके छह परकार ॥ ८२ ॥

तज चक्षु चतु अक्ष विषय,जल धरनी अर छाँय ।
कर्म योग कर्मातीत, भेद षट पुदगलाय ॥ ८३ ॥

अंतिम भेद खंध जु सब, कहे परमाणु सोय ।
अशब्द इक अविभाग है, रूपी हू तसु जोय ॥ ८४ ॥

कहलाय रूपी जोय जु, कारण धातू चार ।
जो अशब्द परिणाम गुण, कहा परमाणु सार ॥ ८५ ॥

शब्द उत्पन स्कन्ध कर, खंध परमाणु मेल ।
उदय उत्पादक शब्द जु, खंध परस्पर ठेल ॥ ८६ ॥

समय संख्या विभाग-कर, भेदक करता खंध ।
देय न देय अवकाश जु, नित प्रदेशि अखंध ॥ ८७ ॥

नोट.—श्लोक ८३ श्री अमृतचंदाचार्य की वृत्ति में नहीं है ।

इक इक रस गंध रु वरण, स्पर्श युग शब्द हेत ।
खुद विन शब्द जुदा खंध, नाम परमाणु देत ॥ ८८ ॥

इन्द्री भोगन वस्तु जे, पच इन्द्री मन काय ।
कर्मादिक जो मूर्त कुछ, ते सब पुद्गल थाय ॥ ८९ ॥

इति पुदगलास्तिकाय अधिकार

अथ धर्म अधर्मास्तिकाय अधिकार

फरस वरन रस गंध विन, अशब्द जग के माहि ।
धर्म असंख प्रदेशी, स्पस्ट विस्तरित माहि ॥ ९० ॥

स्वयं अकार्य अविनाश जु, गतिवान सहकार ।
अनंत अगुरु लघु कर नित, परिणित धर्म विचार ॥ ९१ ॥

मत्स्य गमन जु लोक में, करे उदक उपकार ।
तिम जिय पुद्गल गमन में, धर्म द्रव्य विचार ॥ ९२ ॥

धरम दरव जिम अधरमहु, जग जानो तसु सोय ।
थिति क्रिया जुत जिय पुगल, निमित धरावत जोय ॥ ९३ ॥

थिति गमन जिय पुगल वने, उभय भिन अभिन जान ।
सदभाव जु लोका लोक, जग अम्बर परमान ॥ ९४ ॥

गमन करे न कराय पर, काय धर्मास्ति जोय ।
निमित मात्र तसु जानिये, जिय पुद्गल को सोय ॥ ९५ ॥

हो थिति गमन पुद्गल जिय, संभव तिनमें जान ।
निजहि परिणमन शक्ति से, होय सु थिति गमनान ॥ ९६ ॥

धर्माधर्म द्रव्य व्याख्यान समाप्तः

अथाकाशास्ति काय कथनम्

सर्व जीव पुद्गला सब, धर्म अधर्म रु काल ।
देय अवकाश जो सकल, सोहि लोक नभ भाल ॥ ९७ ॥
धर्म अधर्म पुद्गल जिय, जग वाहिर नहि काल ।
शेप नभ जुदा न जग नभ, अनत अंत विन भाल ॥ ९८ ॥
देय जु अवकाश अकाश, निमित गमन थिति होय ।
सिद्ध किम लोकाग्र रुकें, उरध सुभावी जोय ॥ ९९ ॥
सिध तिष्ठैं लोकाग्र में, जिनवर किया वखान ।
इस निमित्त थिति गमन का, नभ को नाहि पिछान ॥१००॥
जिय पुद्गल थिति गमन जो, होय हेतु आकाश ।
जग नभ मर्यादा वढै, भंग अलोकाकाश ॥१०१॥
यों नभ न निमित गमन थित, धर्म अधर्म पिछान ।
श्रोता लोक सुभाव को, भाष्या जिन भगवान ॥१०२॥
भिनत न सम परिमाण इन, धर्माधर्म अकाश ।
भिन्न निज निज द्रवत ते, इक अनेक परकाश ॥१०३॥

है अमूर्त काल जिय नभ, धर्म अधर्म सु ठाम ।
पुदगल रूपी जानिये, जिय खलु चेतन राम ॥१०४॥

है सह सक्रिय पुगल जिय, शेष न क्रिया वान ।
क्रिया जिया जु पुदगल सह,खंध काल खलु जान ॥१०५॥

जिय से खलु गोचर विषय, जान मूर्त सब सोय ।
शेष जु अमूर्त जानिये, गहे उभय मन जोय ॥१०६॥

काल उदय परिणामन कर, दरव काल परिणाम ।
इम विधि सुभाव उभय का, काल छनिक थिर ठाम ॥१०७॥

काल नामहि करे प्रगट, सत्ता निश्चय काल ।
सुथिर अवर उपजैं नशै, रहे संग चिरचाल ॥१०८॥

ये पुदगल जिय काल नभ, धर्म अधर्म जु भाँहि ।
द्रव्य नाम सबका कहा, काल कायपन नाँहि ॥१०९॥

इम परमागम जानके, संग्रह सु अस्ति काय ।
राग रोप जो त्याग दे, दुक्ख मुक्त हो जाय ॥११०॥

इम जान निज द्रव्य में, अनुभव उधम धार ।
मोह नाश रुष राग समा, होय जगत से पार ॥१११॥

इति पंचास्तिकाय प्रथम खंड समाप्तः

अथ जीवादि नव तत्व प्रतिपादक द्वितीय महाधिकार प्रारम्भ

अपुर्नभव कारण सदा, महावीर सिर नाय ।
कहूँ सु पदार्थ भेद जो, मग मोक्ष प्रगटाय ॥११२॥

चारित सुदर्शज्ञान सह; हीन राग रूप जोय ।
लब्ध बुद्धि जिय भव्य को, राह मोक्ष की होय ॥११३॥

इम जिन कथित तत्वन का, जिह सह रुचि सरधान ।
शब्द सुदर्शन हो उचित, उस भव्य के ज्ञान ॥११४॥

सम्यक्त तत्व सरधान, उन जानन सु ज्ञान ।
चारित जु विषय साम्य है, मग आरूढ़ जीवान ॥११५॥

जीव अजीव भाव तथा, पुन पाप आश्रवान ।
संवर निरजर बंध सह, मोक्ष अर्थ नव जान ॥११६॥

जिय दुविधि चैतन्य मयी, संसारी अर सिद्ध ।
देह अदेह उपयोगी, भोग अभोग जु विद्ध ॥११७॥

बहु विधि देह वनास्पती, तेज भू वायु वारि ।
जीवाश्रित खलु देय जिव, सुख फरस मोह भारि ॥११८॥

थिर तन उनहि तिय थावर, तिरस कहे जल आग ।
असेनि मन परिणामन बिन, जिय एकेन्द्री पाग ॥११९॥

भू कायिकादि पंच विधि, जीवन के समुदाय ।
है सून्य मन भावों से, कहे इकेन्द्री भाय ॥१२०॥

गर्भ तिष्टत बढ़त अण्ड, मिनख मूरछा मांहि ।
उविधि एकेन्द्री जीवहु, जानन योग जु भांहि ॥१२१॥

संख सीपो मातृवाह, संबुक कृमि अपाद ।
इन आदि जिय दो इन्द्री, जाने फरस सवाद ॥१२२॥

खटमल चींटी जूं सहित, कुंभी बिच्छु आदि ।
जाने फरस रस गंधहु, ते इन्द्री जिय लादि ॥१२३॥

माखी मच्छर डांसादि, मधुकी भंवर पतंग ।
गह रूप रस गंध फरस, चो इन्द्री जिय अंग ॥१२४॥

भू जल नभचारी रु नर, नारक तिर्यक देव ।
विज्ञ फरसादि शब्द सह, वली पचेन्द्री भेव ॥१२५॥

कर्म रु भोग भू के नर, भेद सुरन के चार ।
भूमि भेद वत नारकी, तिर्यक बहु प्रकार ॥१२६॥

हो छय करम पूर्व निबध, आयु और गति नाम ।
निज लेश्यावश सुजिय खलु, लह अन्य आयु धाम ॥१२७॥

करें आश्रय जिव समूह, देह वर्तना माँहि ।
भव्य अभव्य संसारी, सिध देही विन माँहि ॥१२८॥

इन्द्री अर छह काय को, खलु में कहा न जीव ।
पै जु उनमें ज्ञान जो, कहा सु जीव सदीव ॥१२९॥

देखे जाने सबहि जिय, सुख चहें दुख डरात ।
करै काज हित अहित हुँ, भोगें फल तसु जात ॥१३०॥
इ विधि अन्य वहु परयाय, जानहु जीव सुजान ।
ज्ञान भिन चिन जडत्व कर, करो अजीव पिछान ॥१३१॥
जिय गुण धर्म अधर्म नहिं, ना नभ पुद्गल काल ।
इन जु अचेतन पन कहा, जीव चेतना चाल ॥१३२॥
अहित भय जु हित प्रवृत्ति, सुख दुख जिस ना ज्ञान ।
होय न यह जिस दरव में, न जड कहें सुजान ॥१३३
शब्द रस गंध संस्थान, फरस रूप संघात ।
बहु गुण परयाय ही है, द्रव्य पुदगला जात ॥१३४॥
अरस अवर्ण अगंध जिय, चेतन विन संस्थान ।
अलिंग गाही अप्रगट, अशब्द मय इस जान ॥१३५॥
जिय जो संसारस्थ खलु, हो असुध उसहि भाव ।
कर्म वंधे जु भाव से, तसु गति इक गति पाव ॥१३६॥
देह लहे गति प्राप्त जिय, जाकर इन्द्री होंय ।
'गहकर तिनसे विषय वह, होयराग रुष सोय ॥१३७॥
इम जग चक्र भ्रमण में, होंय जीव के भाव ।
अनादि अनन्त अन्त सह, भाषी श्री जिनराव ॥१३८॥
भाव राग रुष मोहजिह, होय जु मन आल्हाद ।
शुभ व अशुभ भाव जिया, होय सदा उत्पाद ॥१३९॥

भाव जिय अशुभ पापहै, शुभ सु पुण्य मय होय ।
पुदगल मात्र उभय निमित्त, कर्म भाव मय लोय ॥१४०॥

स्पर्शादि से विषय रूप, सुख दुख करम फलाय ।
भोगा जावे जीव से, सु करम मूर्तिक थाय ॥१४१॥

मूर्त मूर्त स्पर्श सोह, पूर्व मूर्त वंधाय ।
दे उन थान अरुपि जिय, वा उन आप छुटाय ॥१४२॥

राग भला हो जिस जिया, सह दयालुता भाव ।
कालस पनहु चित्त नही, पुण्याश्राव तसु आव ॥१४३॥

अर्हत सिध मुनि भक्ति में, धर्म धरें खलु चेष्ठ ।
चले जु गुरु अनुकूल वह, कहा राग सा श्रेष्ठ ॥१४४॥

देख दुखी छुदित तृषित, आपहु मन दुख होय ।
करे दुख दूर दया कर, अनुकरूपा उस जोय ॥१४५॥

लोभ क्रोध माया मद, जबै पाप मन थान ।
अकुलाहट जो आत्म में, कालुप कहें सुजान ॥१४६॥

विपय लोलुपि मलीन मन, क्रियो सहित प्रमाद ।
पर पीड़ै निन्दा करै, पापहि आश्रव खाद ॥१४७॥

ज्ञान दुप्रयुक्त मोह जु, संज्ञा लेश्या तीन ।
इन्द्रिय वशता पापदा, आर्त रौद्रहू चीन ॥१४८॥

थिर सुमार्ग रोके जबै, संज्ञा अक्ष कपाय ।
रुके छिद्र पापाश्रवा, तब लग ताके भाय ॥१४९॥

मोह राग रुष हीन जो, सब द्रव्यों के मांहि ।
साधु समभावी सुख दुख, शुभ अशुभ नही आंहि ॥१५०॥

योग विषय साधु खलु, पुण्य पाप ना जोय ।
शुभ अशुभ कृत कर्म का, संवर तवै सु होय ॥१५१॥

मुनिवर संवर योग युत, विविध तपों के द्वार ।
कर पुरुषार्थ निर्जराय, खलु वहु कर्म अपार ॥१५२॥

आत्म साधक संवर युत, आत्म नियत से ज्ञात ।
ध्यावे थिर हो ज्ञान को, कर्म जु दूर करात ॥१५३॥

है न जिस मोह राग रुष, वर्तण योगहु नांहि ।
उपजै दाहक शुभाशुभ, ध्यान अग्नि तसु मांहि ॥१५४॥

जब जिय रागी उदय में, करै शुभाशुभ भाव ।
तवै पुदगल कर्म विविध, जिया बंध हो जाव ॥१५५॥

कर्म गहन योग जु, अर सु; क्रिया मन वच काय ।
बंध, भावकर, सुरति रुष; अवर मोह रागाय ॥१५६॥

चतु विकल्प अठ कर्म के, कहे हेतु जिनराय ।
उनहि हेतु रागादि जिय, तिन विन जु न बंधाय॥१५७॥

ज्ञानी के खलु हेतु विन, आश्रव होय निरोध ।
आश्रव भाव अभाव से, होय कर्म का रोध ॥१५८॥

विन कर्म सर्वज्ञ वने, देखे लोका लोक ।
सुख अनन्त इन्द्री रहित, पाय अबाध अटोक ॥१५९॥

पूर्ण दर्शन ज्ञानकर, अन्य दरव से हीन ।
हो ध्यान, हेतु निर्जरा; साधु सुभाव सु लीन ॥१६०॥

करत निरजरा कर्म सव, सहित जु संवर होय ।
भव तजै वेदायु खिपा, इम सु मोक्षमय जोय ॥१६१॥

भिन न दर्शन ज्ञान से, जिया अखंड सुभाव ।
भना सु अनिन्दित चारित, वास उभय थिर भाव॥१६२॥

सुभाव नियत पै अनियत, पर रत गुण परयाय ।
समय संग जिय निज करै, कर्म फन्द नश जाय॥१६३॥

पर पद जु भाव शुभाशुभ, करै राग मय होय ।
स्व चरित्र से भ्रष्ट वह, पर चारित चर जोय ॥१६४॥

आॅय भाव जिह आत्म से, पुण्य पाप के जोय ।
तवही जिय पर चरित चर, जिन उपदेश्या सोय॥१६५॥

विन संग सव एकाग्र मन, जिय निज चारित वान ।
लखत जानत थिर आपहि, रूप सुभाव सुजान ॥१६६॥

अभिन्न निज से आचरे, ज्ञान दर्श के भेद ।
पर पद विषै निजत्व विन, सुचरितचर तसु वेद ॥१६७॥

समकित धर्मादि सरधा, अंग पूर्व विद वोध ।
चारित चेष्टा तप विपै, अनियत शिवमग जोय ॥१६८॥

करै न मुन्ये अन्य कुछ, त्रय सु एकता लीन ।
नय निश्चय खलु तसु जिया, मग जु मोक्षमयचोन ॥१६९॥

निजको निज रूप ही जो, निज से पेख पिछान ।
आचरेहु, हो नियत वह; दर्श चारित ज्ञान ॥१७०॥
जिह जिय जाने लखे सब, उस कर सुख भोगाय ।
भव्यहु जाने उविधि सुख, अभव नाहि सरधाय ॥१७१॥
दर्श ज्ञान चारित ही, शिव मग सेवन जोग ।
बंध वा मोक्ष इनहि कर, कहें इम साधु लोग ॥१७२॥
शुध जीवों की भक्ति से, होय दुक्ख मुंचान ।
माने बुध अबुध भावकर, पर रत ताहि पिछान ॥१७३॥
भक्ति गण अरहंत सिद्ध, चैत्य शास्त्र सुज्ञान ।
कर बांधे बहुतर पुण्य, करे न छय करमान ॥१७४॥
जिह मन पर द्रव्य प्रति, हो अणु मात्रहु राग ।
आगम धर क्यों न भला, सु समय लखे न लाग ॥१७५॥
आतम लक्ष विन रोकना, शक्य न चंचल भाव ।
शुभाशुभ कृत कर्म तसु, रोकन नाहि उपाव ॥१७६॥
तातें निसंग ममत विन, पुनि सिध भक्ति कराय ।
इस रीत इम शिव कामी, पुर निर्वान उपाय ॥१७७॥
संयम तपहु अभ्यासी, हो आगम रुचि पूर ।
पै तीर्थ भक्ति से मोक्ष मग, ताका शिव अति दूर ॥१७८॥
होय भक्ति अर्हंत सिद्ध, चैत्य वचन जिनराय ।
आचरता तप सुविधि वह, निश्चय सुरग उपाय ॥१७९॥

यातें निष्काम सर्वत्र, करे न किन्चित राग ।
इकर विरागी वनत जव, भव तरे भव विराग ॥१८०॥
प्रेरित प्रवचन भक्ति जु, धर्म उद्योतन कार ।
पंचास्तिकाय किया मैं, कथक सु आगम सार ॥१८१॥

अथ पंचास्तिकाय मूल ग्रन्थ समाप्तः

अथ कवि विनय

कुन्द कुन्द गुरुवन्द के, वन्दू गुरु जयसेन ।
पद्यानुवाद हुआ यह, उन कृपा सुख चैन ॥ ४ ॥
लगत श्रावण दौज दिन, विक्रम चौदह साल ।
शनिवार सत्धर्म सना, था जव सूरज वाल ॥ ५ ॥
आतम अम्रत अमर फल, अजय अनंत अपार ।
अजर असहाय अकलंक, अर अटूट अविकार ॥ ६ ॥
शान्त सुभाव सहज सरल, सफल सदा सुखकार ।
सेवो "सागर" सानन्द, सत्पथ सह सत्कार ॥ ७ ॥
छद्मस भूल सुभाव है, ज्ञानी करो सुधार ।
"सागर" चीने आपको, होवे वेड़ा पार ॥ ८ ॥

अथ पंचास्तिकाय ग्रन्थ समाप्तः



श्री समयसार

का

पद्यानुवाद

कवि प्रशस्ति

ज्ञानानंद ही धन है, वीतराग जिनराज ।
समयसार वंदों सदा, शिव सुख पावन काज ॥ १ ॥

पद्म नंदी कुन्द कुन्द, वक्रग्रीव तसु नाम ।
गृद्धपिच्छ ऐलाहू, वंदों आठों याम ॥ २ ॥

रच्या अलौकिक शास्त्र, धर करुणा के भाव ।
जगत जनन हित कारने, समयसार शिव राव ॥ ३ ॥

आत्म ख्याति अमृत रची, वृत्ती वर जयसेन ।
कीनी भाषा वचन का, जयचंद शीतल जैन ॥ ४ ॥

मूल श्लोक पद्य होंय, जाग्या यह मम भाव ।
मूल शंकर पुनि प्रेरिया, धर जग जन हित चाव ॥ ५ ॥

पंच परम पद नमन कर, निज वैभव चितलाय ।
सफल अवतार होय मम, रचना रुचिर वनाय ॥ ६ ॥

मूल ग्रन्थ प्रारंभ

अथ जीवाजीव अधिकार

ध्रुव, अचल, अनुपम सुपद, कर सिद्धन परनाम।
श्रुत केवलि कथित कहूँ, समयसार शुभ नाम ॥ १ ॥

थिर दर्श ज्ञान चरित में, खलु स्व समय सु जान।
पुदगल कर्म प्रदेशहु, जिय पर समय पिछान ॥ २ ॥

एकत्व निश्चयगत समय, सुंदर सब जग ठाम।
अभेद विरोधनी कथा, करै बंध का काम ॥ ३ ॥

सब अनुभी परखी सुनी, कथा भोग बंधान।
पै एकत्वमय भिन्न पर, केवल सुलभ न जान ॥ ४ ॥

दरसाँउ आत्म अभेदी, आत्म विभव निज तान।
दरसाये पे मानिये, चुकूँ गहो न सुजान ॥ ५ ॥

नहि प्रमत अप्रमत पै, ज्ञायक शुद्ध कथान।
ज्ञाता ही को मानिये, दरव आत्म अमलान ॥ ६ ॥

है दर्श ज्ञान चारित जिय, कहै नय व्यवहार।
पै निश्चय भेद न यहै, ज्ञायक शुद्ध संभार ॥ ७ ॥

शक्य न ज्ञान मलेछ कों, बिना कहे तद देश।
त्यों शक्य न विवहार विन, परमारथ उपदेश ॥ ८ ॥

आत्महि श्रुत से जानें, निश्चय केवल शुद्ध।
श्रुत केवलि ताहि कहें, केवलि परम विशुद्ध ॥ ९ ॥

सब सुत ज्ञानज्ञ जो जिय, सुत केवलि तसु मान ।
ज्ञानहि सब आत्म, जिन कह; यों सुत केवलि जान ॥ १० ॥
अभुतार्थ व्यवहार है, कही सत्य नय शुद्ध ।
सत्य शरण जो जिय गहे, खलु सुदृष्टि विशुद्ध ॥ ११ ॥
परम भाव दर्शीन को, सुध नय जानन जोग ।
साधक को उपदेशिया, नय विवहार मनोग ॥ १२ ॥
निश्चय नय से ज्ञात जो, जिय अजीय पुन पाप ।
आसव संवर बंध मुकत, निरजर समकित माप ॥ १३ ॥
जो अबद्ध स्पष्ट अनन्य, निश्चल अर अविपेप ।
असंयुतहु लखे आत्म को, स्वरूप नय शुद्धेप ॥ १४ ॥
जो अबद्ध स्पष्ट अनन्य, लखे आत्म अविपेप ।
सब जिन शासन लखै वह, द्रव्य भाव श्रुतेप ॥ १५ ॥
दरग ज्ञान चारित्त सदा, साधू सेवन जोग ।
पै निगुण रूप जानिये, निश्चय आत्म मनोग ॥ १६ ॥
ज्यों नर नृप को लख के, उसमें करै श्रधान ।
धन का अर्थी होय वह, सेवहि जतन सुजान ॥ १७ ॥
त्यों जोग मोक्षार्थि को, लखना आतम राय ।
पुनि है श्रद्धा जोग वह, फिर अनुचरिये भाय ॥ १८ ॥
हुँ मैं कर्म नोकर्म में, वे मुझ रहे समाय ।
जब लग रह प्रतीत यह, आतम अज्ञानि कहाय ॥ १९ ॥

सचित अचित पर द्रव जो, मिश्र सु निज से भिन्न।
इनमें निज को थापता, उनसे आप अभिन्न ॥ २० ॥
मुझहि थे ये पूर्व में, मैं इनका गत काल।
अर वे मेरे होंयगें, वा मैं उन भविकाल ॥ २१ ॥
झूँठा विकल्प आत्मा में, योंह करता अज्ञानि।
परमार्थि विकल्पे नहीं, सो ज्ञानी जिय जानि ॥ २२ ॥
अज्ञान मोहित बुद्धि नर, है संयुक्त बहु भाव।
बद्ध अबद्ध पुद्गल में, निज का धरता चाव ॥ २३ ॥
लखन जीव, उपयोग है, सरवग ज्ञान मझार।
सो क्यों पुद्गल होय वह, कहता अपना यार ॥ २४ ॥
यदि हो जिय पुद्गल दरव, पुद्गल जिय हो जाय।
तबही तू इम कह सके, दरव पुगल मम भाय ॥२५ ॥
जो जिय होय न देह तो, थुति गुरू अर तीर्थेश।
झूँठहि होवे सब सदा, यों भिन होय न लेश ॥ २६ ॥
यह देह जीव एकहि हैं, वच विवहारहि मान।
पै एकहि द्रव वे नहीं, निश्चय थकी पिछान ॥ २७ ॥
थुति जड़ मय वपु की करे, जुदा जोय इस जीव।
केवलि थुति वंदन किया, मानें मुनी सदीव ।। २८ ॥
निश्चय थकी अयोग है, वपु गुण नाहि जिनेश।
परमारथ थुति केवली, जो गुण गुणहि परमेश ॥ २९ ॥

नगर छटा बरनन किये, होय न वह भूपाल।
ज्यों देहा गुण थुति किये, नहि जिन आतम रसाल॥ ३० ॥

अधिका जाने ज्ञान से, अप्पा इन्द्री जीत।
कहें जितेन्द्र उनी को, साधु सुनिश्चय मीत॥ ३१ ॥

अधिका जाने ज्ञान से, अप्पा मोहा जीत।
कहें जित मोहि उनी को, साधु सुनिश्चय मीत॥ ३२ ॥

मोह विजयी सु साधु के, होय चीन जब मोह।
क्षीण मोही उसे कहें, निश्चय ज्ञायक बोह॥ ३३ ॥

निज से भिन्न पर जानके, त्याग करें सब भाव।
यों ज्ञानहि खलु जानना, प्रत्याख्यान सुभाव॥ ३४ ॥

ज्यों पर वस्तू जानके, लोक करैं तसु त्याग।
लख पर के पर भाव त्यों, ज्ञानी धरै न राग॥ ३५ ॥

कोई है न मोह मेरा, हुँ मैं मात उपयोग।
यों विन मोह ममत कहैं, समय सुज्ञायक लोग॥ ३६ ॥

कोइ न धर्मादि मेरे, हुँ मैं मात उपयोग।
यों विन धर्म ममत कहैं, समय सुज्ञायक लोग॥ ३७ ॥

हूँ एक दरश ज्ञान मई, सदा अरूपी धाम।
पर परमाणु रंच न मम, शुद्ध स्वरूपी राम॥ ३८ ॥

जीवा जीव अधिकार में पूर्व रङ्ग समाप्त

आत्म अजान मूढ़ कोय, पर में करै जु भान ।
कहै जीव, द्रव कर्म को, कोहू अध्यव सान ॥ ३९ ॥

तीव्र मंद अनुभाग में, पड़ें जो अधवसान ।
उसे ही आत्म मानता, कोई नोकर्मान ॥ ४० ॥

कर्मों के उदय ही में, करता आप पिछान ।
तीव्र मंद अनुभाग गुण, होंय जु उन कर्मान ॥ ४१ ॥

जीव कर्म के मेल में, मानें दोनों जीव ।
कर्म संयोग जीव होय, मानत मूढ़ सदीव ॥ ४२ ॥

योंहि और वहु विधि मूढ़, पर में आत्म अलाप ।
निश्चय विद् लेशहु उने, नहिं सुवादि में माप ॥ ४३ ॥

पुगल दरव परिणमन से, उपजे ये सव भाव ।
केवलि जिन ये भाषिया, क्यों कर जीव कहाव ॥ ४४ ॥

पुद्गल मय ही कर्म अठ, कही सु श्री जिनराज ।
उदय में फल परसिध है, देवें दुख का साज ॥ ४५ ॥

अध्यवसानादिक भाव, जिय के किये वखान ।
तहां उन सवकी कीजिये, नय विवहार पिछान ॥ ४६ ॥

सैन संग नृप देखके, कहें सेन सब भूप ।
है कथन व्यवहार का, भूप तहाँ इक रूप ॥ ४७ ॥

त्यों सव अधवसानादिक; हैं पर भाव जु जीव ।
सूत किया विवहार इम, पै इक जीव सदीव ॥ ४८ ॥

रस रूप गंध शब्द जिय, नाहिं लिंग आकार।
इन्द्रिय गोचरहु नही, मात चेतना धार॥ ४९॥

वरण फरश रस गंधहू, रूप देह संस्थान।
संहननहू नहि जीव में इम पिछान मतिमान॥ ५०॥

मोह द्वेष से रहित है, नाहि जीव के राग।
नोकर्म ना आश्रवा, तथा करम के भाग॥ ५१॥

है न कर्म स्पर्द्धक इसे, नाहि वर्ग वर्गान।
अध्यवसान न जासु के, ना अनुभाग स्थान॥ ५२॥

है नही थान मार्गना, नाही योग स्थान।
बंध योग थानहूँ ना, जिय के कहैं पुमान॥ ५३॥

स्थिति बंध थानहूँ नहि, ना थान संकलेश।
संयम लब्धि विशुद्धिहू, कही नाहि परमेश॥ ५४॥

जीव अर गुण स्थान भी, नही जीव के जान।
परिणाम जड़ द्रिव्य के, भाषी सब भगवान॥ ५५॥

वरणादि गुण स्थान लों, भाव जीव विवहार।
पै ये जिय के हैं नहीं, निश्चय थकी विचार॥ ५६॥

क्षीर नीर वत योग है, ऐसा जान सुजान।
गुण अधिका उपयोग है, यों वे जीव न जान॥ ५७॥

पथिक लुटता देख कहैं, पथ लुटा वहां भाय।
विवहारीजन यों कहैं, पै ना पंथ लुटाय॥ ५८॥

त्यों वरण कर्म नोकर्म, तहाँ जीव में देख।
कहा वर्ण जिन जीव का, सो विवहारहि पेख ॥ ५९ ॥
यों फरश रस गंध वरण, देहा थानक आदि।
सो जिय के विवहार से, कहैं ज़ु निश्चय वादि ॥ ६० ॥
वरनादिक संसार में, जिय संसार मझार।
मुक्त जीव निश्चय थकी, हैगा उनसे पार ॥ ६१ ॥
ये सब भाव जीवहि हैं, मानो जो इस भाँति।
तो तुमरे मत होंय सब, जीवा जड़ इक जाति ॥ ६२ ॥
संसारी जिव, वर्णादि; जो यह मत तुझ होय।
तो जग थिति सब जीवगण, हों रूपित्व पुनि सोय ॥ ६३ ॥
हुआ पुद्गल, जीव, बाल !; सम चिन्ह से इस रीत।
शिव पाय करहु पुद्गला, जिवत्व धरै सु मीत ॥ ६४ ॥
एकादि पंचेन्द्रिय सब, बादर सूक्ष्म भेद।
परयाप्त अपरयात भी, नाम प्रकृतिहु वेद ॥ ६५ ॥
पुदगल मय ही प्रकृति, करन रूप हो जाय।
सोही जीव थान रचै; क्यों कर जीव कहाय ॥ ६६ ॥
परयाप्त अपरयाप्त सब, सूक्ष्म देह बादार।
जीव संज्ञा तिन कही, कथन सूत्र विवहार ॥ ६७ ॥
करम मोहनी उदय से, कहे सबहि गुण थान।
क्यों कर जीवा होंय वे, सदा अचेतन मान ॥ ६८ ॥

इति जीव अजीव अधिकार समाप्त

अथ कर्ता कर्म अधिकार

आत्म न जानैं आश्रवा, तद् अन्तर अर भेद ।
क्रोधादिक वरतै जिय, अज्ञानी विन वेद ॥ ६९ ॥

क्रोधादिक वरते जो जिय, हो संचय करमान ।
खलु बंध होंय कर्म इम, भाषी जिन भगवान ॥ ७० ॥

जव जिव, आसव आत्म का; करता भेद पिछान ।
तवै तहाँ तसु तास को, नाहिं होय वंधान ॥ ७१ ॥

अशुचिपना विपरीतता, आसव के ही जानि ।
अर दुखहु कारण हैं वे, निवृति करै जु ज्ञानि ॥ ७२ ॥

दर्श ज्ञान कर पूर्ण हूँ, खलु इक निर्मम शुद्ध ।
स्थित लीन स्वभाव में, उनको छयता बुद्ध ॥ ७३ ॥

आश्रव जीव निबद्ध है, अशरण अधुव असार ।
दुख मय फलहू दुख्ख है, जानि करै छुटकार ॥ ७४ ॥

करम और नोकर्म के, करै न जो परिणाम ।
पै मात्र जाने तिनें, सो ज्ञानी अभिराम ॥ ७५ ॥

उपजै गहे न परिणमें, निश्चय पर परयाय ।
वहु विधि पुद्गल करम बुध, निज को रहे जनाय ॥ ७६ ॥

उपजै गहे न परिणमें, निश्चय पर परयाय ।
वहु विधि निज परिणाम बुध, निज को रहे जनाय ॥ ७७ ॥

उपजै गहे न परिणामें, निश्चय पर परयाय ।
अनत फल कर्म पुगल बुध, निजको रहे जनाय ॥ ७८ ॥

उपजै गहे न परिणामें, निश्चय पर परयाय ।
पै निज भावहि परिणामें, पुदगल दरवहु भाय ॥ ७९ ॥

जिव भावहु निमित पुदगल, करम रूप जो होंय ।
पुदगल करम के निमितहु, वरने जीवहु सोय ॥ ८० ॥

कर्म जीव गुण ना करै, ना जीव करै कर्मान ।
अन्योन्य केहि निमित से, बने भाव उन जान ॥ ८१ ॥

यों हुआ कर्ता स्वयं, अप्पा निज परिणाम ।
भाव पुदगल कर्म कृत, होय न करता राम ॥ ८२ ॥

अप्पा निजहि कर्ता है, नय निश्चय आधार ।
त्यों भोगताहु आपका, करिये शिष्य विचार ॥ ८३ ॥

कर्ता विविध कर्म पुगल, कथनी नय विवहार ।
उसी विविध का भोगता, करिये आत्म विचार ॥ ८४ ॥

जो हो कर्ता भोगता, जड़ करमों की भाँहि ।
भिन्न न क्रिया दोय से, बने न जिन मत माँहि ॥ ८५ ॥

जड़ अरू आतम भाव का, अप्पा रहा मनाय ।
तातैं द्वि क्रिया वादि, मिथ्या दृष्टि कहाय ॥ ८६ ॥

दो विधि मिथ्या भाव हैं, जिव अजीव के भेद ।
त्यों कषाय मोह योगहु, अज्ञान अवृत वेद ॥ ८७ ॥

मोह, योग, मिथ्यादि जड़, सो पुदगल करमान।
त्यों योग मिथ्यादि जीव, वह उपयोग वरवान ॥ ८८ ॥

मोह युक्त उपयोग के, त्रिपरिणाम अनादि।
भाव अविरता जानना, अर अज्ञान मिथ्यादि ॥ ८९ ॥

शुद्ध निरन्जन नियत पै, तीन जु भाव विकार।
जिस भाव करै उपयोग, कर्ता है तसु यार ॥ ९० ॥

जीव करै जा भाव को, है कर्ता तसु भाव।
होंय ततक्षण कर्म रूप, पुदगल आप सुभाव ॥ ९१ ॥

आप रूप पर को करै, आपहु पर को होय।
करमन का कर्ता बनें, वह अज्ञानी सोय ॥ ९२ ॥

आप रूप पर ना करे, आप न पर को होय।
सो जिय ज्ञानी कर्म का, होय न कर्ता जोय ॥ ९३ ॥

"मैं क्रोध" आत्म विकल्पे, त्रिविधि यह उपयोग।
आत्म भाव उपयोग मय, कर्ता बने मनोग ॥ ९४ ॥

"मैं धर्मादि हुँ" विकलपे, त्रिविधि यह उपयोग।
आत्म भाव उपयोग मय, कर्ता बने मनोग ॥ ९५ ॥

पर दरवों को निज रूप, करै भाव अज्ञान।
अन्य रूप आपहु बने, मन्द मती नादान ॥ ९६ ॥

इम कर्ता आतम कही, निश्चय जानन हार।
यों इम जाने जो सही, तजे कर्तत्व सार ॥ ९७ ॥

घट पट रथादि दरव को, इन्द्री नौकर मान ।
विविध विधि करै कर्म जग, यों विवहारी मान ॥ ९८ ॥
पर दरव जीव जो करै, तन्मय खलु हो जाहि ।
पर है न तन्मय यों वह, यातें कर्ता ना हि ॥ ९९ ॥
जीव घट पट करै नही, करै दरवहु शेष ।
निमित योग उपयोग पै, सो कर्ता उन वेष ॥१००॥
ज्ञानावरणादिक सभी, पुगल दरव परिणाम ।
कर्ता आत्म उनें नही, जानें सो बुध काम ॥१०१॥
जो शुभाशुभ भाव करै, तद् कर्ता बन जात ।
सोही जीव करम बनैं, वेदक हो उस भाँत ॥१०२॥
जो हो गुण जा दरव में, अन्य नाँहि पलटान ।
परस्पर गुण पलटे नहि, दरव किम परिणमान ॥१०३॥
ना गुण ना द्रव्य करै, पुदगल करम मझार ।
उभय जब जीव ना करै, किमपि करम करतार ॥१०४॥
जीव निमित से देख के, बंध करम परिणाम ।
कहें अप्पा करम किया, उपचारहि उस ठाम ॥१०५॥
योद्धागण जो युध किया, लोक कहें भूपार ।
ज्ञानावरणहु जिव किया, मात्र कथन विवहार ॥१०६॥
बाँधे ग्रहे उपजावे, परणामत ही सोय ।
पुदगल दरव को आतमा वच विवहारहि जोय ॥१०७॥

जन गुण दोप करे नृप, कहें जगत विवहार ।
त्यों जिय गुण जड़ दरव का विवहारहि करतार ॥१०८॥

सामान्य प्रत्यय चार, करें बंधु खलु जान ।
मिथ्यात्व अव्रत कपाय, योगहु किया बखान ॥१०९॥
पुनि कीने उन चार में, तेरह विधि के भेद ।
थान मिथ्यात आदि तें, त्रयोदश लों वेद ॥११०॥

जड़ कर्मोदय वश बने, नियत अचेतन थान ।
भले कर्म वे जो करैं, भोगे नाहि सुजान ॥१११॥
गुण प्रत्यय करम करैं, करम अकरता जीव ।
यातें गुण ही जानिये, करता कर्म अजीव ॥११२॥

इक जिम जिव उपयोग है, त्यों किरोध जो होय ।
बने एकत्व ही तहां, जीव अजीवा दोय ॥११३॥
योंह या भांति नियम से,जीव अजीव दिखाय ।
प्रत्यय कर्म नोकर्महु, दोप एकता आय ॥११४॥

क्रोध रू जिय उपयोग मय,भिन्न परस्पर होय ।
प्रत्यय कर्म नोकर्महु, जान जिया से जोय ॥११५॥

आप न पलटे कर्म में, जिय बंधा ना जोय ।
जो इम जाने पुदगला, अपरिणामि वह होय ॥११६॥
करम भाव परिणमें नहि, कर्म वर्गना आप ।
जग अभाव सिध होय या, मत जु सांख्य की छाप ॥ ७॥

जो जिय पुदगल दरव को, करम भाव परनाय ।
आप न परनत ताहि जिय, परिणति काहि कराय ॥११८॥
जो पुगल दरव आप ही, करम भाव परनाय ।
कर्म, कर्मत्व, जिय करै ; सो मिथ्या ठहराय ॥११९॥
कर्म परिणित पुगल दरव, बने कर्म नियमात ।
परिणित ज्ञानावरणादि, जान तहाँ तद भाँत ॥२२०॥
क्रोध में न आप परिनय, ताँहि कर्म बंधाय ।
तो जीवा तुझ मत विषै, विन परिणति-हो जाय ॥२२१॥
क्रोध भाव नहि परिणमें, जो जीवा यह आप ।
जग अभाव सिध होय या, मतजुसांख्य की छाप ॥२२२॥
क्रोध पुगल कर्म, जिय को; क्रोध भाव परनाय ।
आप न परनत, क्रोध किम; परिणति काहि कराय ॥२२३॥
जो आत्म आप तब मता, क्रोध भाव परनाय ।
क्रोध्र क्रुध रूप जिय करै, सो मिथ्या ठहराय ॥२२४॥
क्रोध मान लोभ उपयुत, माया हूँ में जीव ।
बने तद क्रोधादिरूप, थिर यह नियम सदीव ॥२२५॥
भाव कर्म करता बने, जीव धरे जो भाव ।
अज्ञानमय अज्ञानिहु, ज्ञान रूप बुध ठाव ॥२२६॥
भाव अज्ञान अबुध के, तासों करम कराय ।
ज्ञानी के तो ज्ञानमय, करता करम न भाय ॥२२७॥

ज्ञान भाव से ऊपजे, ज्ञानमई ही सोय।
तातें बुध के भाव सब, ज्ञानमई ही होय ॥१२८॥
अज्ञानभाव निपजाय, भाव अयान हि सोय।
यों अबुद्ध के भाव सब, अयानमय ही होय ॥१२९॥
ज्यों कनकमई भाव से, कुन्डलादि उपजाय।
अवरु लोह मय भाव से, कड़ा आदि निपजाय ॥१३०॥
बहु विधि त्यों अबुद्ध के, बने अबुधमय भाव।
अरु बुधजन के ज्ञानमय, जानों सब ही ठाँव ॥१३१॥
तत्व अज्ञानि जिया के, उदय तहां अज्ञान।
उदय मिथ्यात्व में कहा, है तत्व असरधान ॥१३२॥
अविरत भाव जु जीव का, उदय असंयम जान।
उपयोग मलिन में जिया, उदय कषाया मान ॥१३३॥
वर्तन निवर्तन मय जो, शुभ अशुभन के भाव।
जो उछाव उन जिय धरै, उदय योग का पाव ॥१३४॥
जब हों कारण उक्त में, तब स्कंध कर्मान।
हों ज्ञानावरणादि मय, अष्ट विधि परिणमान ॥१३५॥
कर्म वर्गना रूप वे, जाँय बंध जिय साथ।
भाव बंध मय भाव को, कारण भाष्यो नाथ ॥१३६॥
हो जिय संग पुदगल का, कर्म रूप परिणाम।
तो वे दोनों ही लहें, कर्मत्वहि का नाम ॥१३७॥

मात्र पुगल के होय पै, कर्म भाव परिणाम ।
जिया भाव हेतु से यों, भिन्न करम का काम ॥१३८॥
होंय कर्म संग जिय के, रागादिक परिणाम ।
तो वे दोनों ही लहें, रागत्वहि का नाम ॥१३९॥
मात्र जीव के होय पै, रागादिक परिणाम ।
कर्मोदय हेतु से यों, भिन्न जीव का काम ॥१४०॥
बधा छिवा व्योहार से, कर्म जीव के साथ ।
बधा छिवा पर है न यह, कही नियत से नाथ ॥१४१॥
बद्ध अबद्ध कर्म, जिया; ये नयपक्ष कथान ।
तज नय पक्ष करै कथन, समयसार वह जान ॥१४२॥
जीव रहित नय पक्ष से, धरै समय में लक्ष ।
लखै उभय नय कथन वह, लेशहु गहे न पक्ष ॥१४३॥
सम्यक्त रु सुज्ञान हैं, उस एकहि के नाम ।
सब नय पक्ष रहित कहा, समयसार अभिराम ॥१४४॥

द्वितीय कर्ता कर्म अधिकार समाप्तः

अथ पुण्य पाप अधिकार

जो शुभ कर्म सुशील तुम, अशुभ कहो जु कुशील ।
प्रवेश जग जिय जो करें, क्योंकर होय सुशील ॥१४५॥
बाँधत बेड़ी लोह नर, ज्यों कनकहु की सोय ।
करम किया त्यों शुभाशुभ, बाँधे जीवहि जोय ॥१४६॥

करो न इम राग समन्ध, उभय कुशीलहु भाय ।
तिन के राग समन्ध सों, निज सुख जाय नशाय ॥१४७॥

यथा मानुष कोइ यहां, दुराचारि नर जान ।
तजैं राग सम्बन्ध वहां, तासों नर मतिमान ॥१४८॥
कुत्सित शील स्वभाव बुध, कर्म प्रकती जोय ।
राग समंध तजे तहां, रति सुभाव जो होय ॥१४९॥
रागी बांधे कर्म को, मुक्त विरागी जीव ।
राग न धर इम करम में, श्री जिन कहे सदीव ॥१५०॥
परम पदार्थ समय नियत, मुनी केवली शुद्ध ।
ज्ञानिहु जान, तिष्टे तँह, मुकति लहै मुनि बुद्ध ॥१५१॥
विन तिष्टे परमार्थ में, तप विरता आचार ।
बाल संज्ञा तिने कही, श्री जिन केवल धार ॥१५२॥
व्रत नियम तप शील के, भले करें आचार ।
परमार्थ बाह्य होन तें, खुलै न मुकती द्वार ॥१५३॥
परमार्थ बाह्य "सागर", मुकति नियम ना जान ।
संसार हेतु पुराय को, इच्छै धर अज्ञान ॥१५४॥

समकित तत्व श्रधान है, है अधिगम उन ज्ञान ।
तजन रागादि चरण है, ये मग मुकती थान ॥१५५॥
करै प्रवति विवहार में, विषम सु निश्चय छोड़ ।
यति आश्रित परमार्थ पै, करैं करम की तोड़ ॥१५६॥

मल मिलन तें श्वेतता, होय वस्त्र की नाश।
त्यों मिथ्या मल लेप से, समकित हू अनयाश ॥१५७॥
मल मिलन तें श्वेतता, होय वस्त्र की नाश।
त्यों अज्ञान मल लेपहि, सुज्ञानहु अनयाश ॥१५८॥
मल मिलन तें श्वेतता, होय वस्त्र की नाश।
त्यों कषाय मल लेप से, चारित्रहु अनयाश ॥१५९॥
सर्व ज्ञान दर्शी यह, करै जगत में वास।
करम रज निज लिप्त जिया, ज्ञेय नाहिं परकास ॥१६०॥
समकित रोकक जिन कहा, मिथ्यातहि जग खान।
मिथ्यादृष्टि होय जिया, उदय तासु में जान ॥१६१॥
ज्ञानहि रोकक जिन कहा, अज्ञानहि जग खान।
अज्ञानी होवे जिया, उदय तासु में जान ॥१६२॥
चारित रोकक जिन कहा, है कषाय जग खान।
बिन चारित होवे जिया, उदय तासु में जान ॥१६३॥

तृतीय पुण्य पाप अधिकार समाप्तः

अथ आश्रव अधिकार

मिथ्यात्व अव्रत कषाय, योगहु संग असंग।
बहु भेद संग आसवा, जीव भाव ही अंग ॥१६४॥
ज्ञान वरणादि करम के, असंज्ञ आसव होंय।
जिय कारण उन भी बनें, कर रागादिक सोय ॥१६५॥

यों सद्दृष्टि अबन्धक, आसव भाव अभाव ।
प्रत्यय बंधक न उन बिन, भाषी श्री जिन राव ॥१७६॥
राग रुष मोह आश्रव, सुदृष्टिहु के नांहि ।
तिन बिन द्रव्य प्रत्यय, नांहि करम बंधाहि ॥१७७॥
चतु विकल्प से करम अठ, करम हेतु रागादि ।
रागादिक जो ना करे, बने न कर्म सवादि ॥१७८॥
मानुष भोजन जो किया, उदर अग्नि संयोग ।
मांस रक्त वसादि रूप, बने विविध विधि योग ॥१७९॥
तिम भूत बद्ध प्रत्यय, करै कर्म बहु भेद ।
यदि ज्ञानी जीव वहां, नय शुध देता छेद ॥१८०॥

चतुर्थ आश्रव अधिकार समाप्त.

अथ संवर अधिकार

है उपयोग उपयोगहि, क्रोध क्रोधहि जान ।
पै ना एकहु इक विषय, नय निश्चय पहिचान ॥१८१॥
अष्ट कर्म नोकर्महू, ना उपयोग मझार ।
उपयोगहु ना तिन विषै, होय कभी किस कार ॥१८२॥
इम अविपरीत ज्ञान जु, जबै जीव को आव ।
जिय शुध उपयोगी नेकहु, धरै न परके भाव ॥१८३॥
तजै न कनक कनक भाव, आग तपायो जोय ।
ज्ञानत्व ज्ञानि तजै ना, कर्म तपायो सोय ॥१८४॥

सुख वा दुख उदै नियमहु, होय वस्तु उपभोग ।
तद् सुख दुख अनुभवै वह, फेर निर्जरा योग ॥१९४॥

विष खाये वैध मनुष्य, मरें नाहि जिस भांति ।
त्यों बुध बंधे न भोगे, पुगल करम के जाति ॥१९५॥

अरतिता से पी मदिरा, होय न उनमत कोय ।
बुध उपभोगे अरति से, बंध न पावै सोय ॥१९६॥

इक सेता नहि सेवता, हो सेवक विन सेय ।
कार्य क्रिया वर्ततहु, कर्ता हो न करेय ॥१९७॥

करमन के उदय विपाक, जिनवर कहे अनेक ।
सो मुझ स्वभाव है नहि, ज्ञायक भावहि एक ॥१९८॥

पुगल करम मय राग का, उदय विपाकहि रूप ।
ये मुझ भाव नियत नहीं, हूँ ज्ञायक स्व-रूप ॥१९९॥

ज्ञायक सुभाव आत्म को, बुध जाने इस रीत ।
उदय कर्म विपाक तजै, जान तत्व वह मीत ॥२००॥

रहे जीव को लेशहू, रागादिक सदभाव ।
सब आगम धर हो भला, लखै न आत्म कदाव ॥२०१॥

आतम जब जाने नहीं, परहु न जाने सोय ।
जड़ चेतन इम लखै बिन, सुदृष्टी किम होय ॥२०२॥

अपद भूत द्रव्य भाव, तजहु आत्म से मित ।
उपलभ सुभाव इम नियत, गह थिर एकहु चित ॥२०३॥

ज्ञान पंच मति श्रुतादि, इकही पद सब भेद ।
ज्ञान पद परमार्थ वो, लह जिव मुकति अखेद ॥२०४॥

ज्ञान, सरुप, लहै न पद, गुण ज्ञान कर हीन ।
जिय चहें मुकति कर्म से, ज्ञान नियत गह लीन ॥२०५॥

उस ज्ञान में ही , सदा, रमण करहु हो तुष्ट ।
इससे ही तू तृप्त हो, मिले सहज सुख पुष्ट ॥२०६॥

पर दरव को निज द्रव्य, बुद्ध कहे इम कौन ।
है निज आत्म संग निज, जानत निश्चय भौन ॥२०७॥

कदा परिग्रह होय मम, तो मैं बनू अजीव ।
ज्ञाता ही मैं नियत से, मेरा वोह न कदीव ॥२०८॥

भिदे, छिदे लेजाय भी, जिम तिम जाय पलाय ।
नहि है पर संग मुझ, चाहे जाय नशाय ॥२०९॥

कहा असंगी अनिच्छक, इछे न पुण्य पुमान ।
संगी ना, यों पुण्य का; ज्ञायक ही तसु जान ॥२१०॥

कहा असंगी अनिच्छक, इछे न पाप पुमान ।
संगी ना, यों पाप का, ज्ञायक ही तसु जान ॥२११॥

कहा असंगी अनिच्छक, इछे न अशन पुमान ।
संगी ना यों अशन का, ज्ञायक ही तसु जान ॥२१२॥

कहा असंगी अनिच्छक, इछे न पान पुमान ।
संगी ना यों पान का, ज्ञायक ही तसु जान ॥२१३॥

भाव विविध उक्तादि सब, इच्छै नांहि पुमान ।
सर्वत्र खलु निरालंब, ज्ञायक भाव सुजान ॥२१४॥

उत्पन उदय का भोग जु, अरति भाव से होय ।
करे न कदा बुध बांछा, भावि उदय का जोय ॥ २१५ ॥

वेध वेदक भाव उदय, समय समय नश जात ।
ज्ञानी इम जानें तिनै, बान्छे न कोऊ भाँत ॥ २१६ ॥

निमित बंध उपभोग के, जगत देह के मंच ।
उन अधवसान उदय बुध, राग धरे ना रंच ॥ २१७ ॥

बुध करम मध्य गतहु सव, तजै दरव के राग ।
तोहू कर्म रज लिप्त ना, कन्चन करदम लाग ॥ २१८ ॥

अबुध कर्म मध्य रह सव, धरै दरव के राग ।
होय कर्म रज लिप्त वह, लोहा कर्दम लाग ॥ २१९ ॥

संख सचित अचित मिश्रहु, नाना दरवहि खाय ।
पै श्वेतता तासु की, होय न काली जाय ॥ २२० ॥

मिश्र चित अचित वस्तु बहु, त्यों बुध भी भोगाय ।
ज्ञान तसु अज्ञान में, पै न सके पलटाय ॥ २२१ ॥

श्वेत सुभाव संख वही, तज काला अपनाय ।
काला आपहि परनमै, श्वेत जो छिटकाय ॥ २२२ ॥

तज तिम ज्ञान सुभाव को, अबुध भाव परनाय ।
ज्ञानिहु तवै नियम से, होय अबुधता माय ॥ २२३ ॥

वृत्ति हेतु नर कोऊ, करे सेव भूपाल।
वह भी देय सुखद उसे,भोग विविध अर माल ॥ २२४ ॥

त्यों करम रज, सुख निमित,करे सेव नर बाल।
वह भी देय सुखद उसे,भोग विविध अर माल ॥२२५ ॥

वृत्ति हेतु नर कोऊ, नाहि सेय भूपाल।
वह भी देय न तसु सुखद,भोग विविध अर माल ॥ २२६ ॥
यों विषय हेतु कर्मरज, ना सेवे बुध लाल।
वह भी देय न तसु सुखद,भोग विविध अरमाल ॥ २२७ ॥

होय निशंकित समकिती, यों निर्भय अभिराम।
सप्त भयों से रहित वह, इम निशंक तसु नाम ॥ २२८ ॥

करम बंध मोह कारक, देय चार पद छेद।
चिंमूरत शंका रहित, समकिती वह अखेद ॥ २२९ ॥
सब धर्म रु कर्म फल की, कांक्षा धरै न खेद।
चिन्मूरत कांक्षा रहित, समकिती वह अखेद ॥ २३० ॥
सब वस्तु धर्म विषै, घृणा करै न खेद।
चिन्मूरत निर्विचिकित्स, समकिती वह अखेद ॥ २३१ ॥

सब कर्मोदय भाव में, अमूढ़ सुदिष्टि जोय।
चिन्मूरत अमूढ़दिष्टि, कहा समकिती सोय ॥ २३२ ॥
सिद्ध भक्ति सहित जो नर, रहा विभाव ढ़काय।
चिन्मूरत उपगूहनकर, सोइ समकिती थाय ॥ २३३ ॥

कुमार्ग जाते स्वात्म को, मोक्ष मार्ग थपाय।
चिन्मूरत थितिकरणायुत, सोइ समकिती भाय ॥ २३४ ॥
मोक्ष मार्ग साधक त्रय, वत्सल धरै जु भाव।
चिन्मूरत वात्सल्ययुत, सोइ समकिती राव ॥ २३५ ॥
घूमें विद्या रथहि चढ़, मन रथ मग में राम।
जिन ज्ञान सु प्रभावकर, सो समकिती अभिराम ॥ २३६ ॥

छट्ठा निर्जरा अधिकार समाप्तः

अथ बंध अधिकार

कर तेल मर्दन इक नर, बहुत धूलि के थाम।
रह, बहु शस्त्रन से तहाँ, करें वह व्यायाम ॥ २३७ ॥
ताड़ तमाल केल बाँस, इम विविध तरु पात।
छिदे भेदे, चित अचितहु; करत तहां उपघात ॥ २३८ ॥
इविधि नाना करणों से, करते भी उपघात।
धूलि लेप कारण कवन, नियत सोच यह बात ॥ २३९ ॥
धूलि बन्ध कारण तहां, तिल चिकनाहट जान।
अन्य चेष्ट तन है नहीं, निश्चय करो पिछान ॥ २४० ॥
वर्तत बहु विधि चेष्ट यों, मिथ्या दृष्टी जीव।
कर रागादिक, उपयोग; बांधत कर्म सदीव ॥ २४१ ॥
यदि फिर तेल छुडाय वह, बहुत धूलि के थाम।
रह बहु शस्त्रन से तहां; करे नर व्यायाम ॥ २४२ ॥

सुख दुख दाता परहि को, मानत आप अजान ।
मोही नाम धराय वह, उलट ज्ञानी मान ॥२५३॥

पै जिय होंय निज करमहि, सुखी दुखी संसार ।
तू करम ना देय उने, किम सुख दुख करतार ॥२५४॥

पै जिय होंय निज करमहि, सुखी दुखी संसार ।
वे कर्म ना देंय तुझे, किम तुझ दुख करतार ॥२५५॥

पै जिय होय निज करमहि, सुखी दुखी संसार ।
वे कर्म ना देंय तुझे, किम तुझ सुख करतार ॥२५६॥

मरता दुखी होता है, निज कर्मोदय जीव ।
भाव मारा दुखी किया, मिथ्या किम न सदीव ॥२५७॥

मरा न दुखी हुआ यहू, निज कर्मोदय जीव ।
भाव न मारा दुख दिया, मिथ्या किम न सदीव ॥२५८॥

सुखी दुखी जिव करन के, भाव मूढ़ अज्ञान ।
शुभाशुभ करमों का ही, हो उससे बन्धान ॥२५९॥

मैं जिय दुखित सुखित करूँ, करे यों अधव सान ।
वो ही बान्धे पुण्य वा, होय पाप बन्धान ॥२६०॥

मैं जिय मारूँ जिवाऊ, करे यों अधव सान ।
वो ही बान्धे पुण्य वा, होय पाप बन्धान ॥२६१॥

अधवसान से हि निश्चिय, बन्ध करम का मान ।
जीव मरो वा ना मरो, बन्ध रूप इम जान ॥२६२॥

व्रत समिति गुपति शीलहु, जिन कथ तपहू तान ।
आचरतहु - अभव्य अबुध, मिथ्या दृष्टी जान ॥२७३॥

पढ़ै शास्त्र अभव्य सर्व, बिन मोक्ष सरधान ।
पै पढ़ना गुण ना करै, बिन सुसरधा ज्ञान ॥२७४॥

सरधा प्रतीत रूचि धरै, स्पर्शहु धर्म माँहि ।
कर्म क्षयार्थ ना करै, निमित्त भोग कराहि ॥२७५॥

जीवादि तत्व दर्श है, आचा-रादि ज्ञान ।
षट जोव काय चरित है, वच विवहारहु जान ॥२७६॥

निश्चय से मुझ आत्म ही, है दरशन रू ज्ञान ।
चारित संवर योग भी, वही प्रत्या-ख्यान ॥२७७ ॥

परनै न राग रूप में, फटिक मणी शुध आप ।
पै रक्तादि दरवहु कर, होय रक्तादि छाप ॥२७८॥

ज्ञानी इम शुध आपतें, परनै न, राग माँहि ।
अन्य रागादि दोष ही, रागी ताहि बनाहि ॥२७९॥

आपहि आप बुध ना करै, राग द्वेष रू मोह ।
कषाय भावहु ना धरै, कर्ता तिन नहि सोह ॥२८०॥

राग रूष कषाय उदया, जवै होंय जो भाय ।
कर उन सम परिणित जीव, फिरहु तिनै बंधाय ॥२८१॥

राग रूष कषाय उदया, जवै होंय जो भाय ।
उन सम परिणति आप कर, तिनै आत्म बंधाय ॥२८२॥

अप्रतिक्रमण उभय विधि, अप्रतख्यानहु मान ।
इस उपदेशहु आत्म को, कहा अकारक जान ॥२८३॥

द्रव्य भाव सम्बन्ध से, भेद उभय का मान ।
इस उपदेशहु आत्म को, कहा अकारक जान ॥२८४॥

अप्रतिक्रम अपचख्यान, द्रव्य भाव का जोय ।
जब तक करता आतमा, करता तिनका होय ॥२८५॥

अधः कर्म आदि जो यह, दोष पुद्गला जान ।
अन्य द्रव्य गुण जे सदा, करे सु किम मतिमान ॥२८६॥

अधः कर्म उद्देशिका, द्रव्य पुद्गला जान ।
सो मम कृत होय क्यों, सदा अचेतन खान ॥२८७॥

सातवां बंध अधिकार समाप्तः

अथ मोक्ष अधिकार

कोई पुरुष बन्धन में, है बंधित चिरकाल ।
तस तीव्र मंद स्वभाव, जानैं बन्धहु काल ॥२८८॥

होय न बंधन मुक्त वह, बिन करे तसु छेद ।
बहु काल वह बिताय भी, हो न मुकत बिन भेद ॥२८९॥

इम प्रदेश, थिति, प्रकृति; कर्म बंध अनुभाग ।
जानत होय न मुकत वह, पै होय शुध अराग ॥२९०॥

बद्ध नर मात विचारहु, छुटे न बन्धन जोय ।
त्यों जीवा बंध विचार, लहे न मुकती सोय ॥२९१॥

बद्ध बन्धन मुकति होय, करै छेद बन्धान ।
त्यों जीव बंध छेदकर, पावै सु मुक्ति थान ॥२९२॥

स्वभाव, बन्ध, आत्म का, लेवत जोय पिछान ।
होय विरक्त बन्ध प्रति, पावै सु मुक्ति थान ॥२९३॥

नियत निज निज चिन्ह होय, जीव बंध का छेद ।
प्रज्ञा छैनी छेदते, होय सु भिन्न अरवेद ॥२९४॥

नियत निज-निज चिह्न होय, जीव बंध का छेद ।
छेद बंध तजिये तहां, गहो सु आत्म अखेद ॥२९५॥

होय ग्रहण किम कर वह ? कर प्रज्ञा के द्वार ।
जिम तुम प्रज्ञा छे दिया । गह तिम प्रज्ञा लार ॥२९६॥

हूँ चेतन रूप खलु इम, प्रज्ञा गहनो जोग ।
शेष भाव सव, पर मुझे, है इम जानन योग ॥२९७॥

हूँ मे दृष्ट नियत कर, प्रज्ञा गहनो जोग ।
शेष भाव सव, पर मुझे, है इम जानन योग ॥२९८॥

हूँ में ज्ञाता नियत कर, प्रज्ञा गहनो जोग ।
शेष भाव सव, पर मुझे, है इम जानन योग ॥२९९॥

जान सब भाव परकीय, शुध करत निज पिछान ।
मेरे हैं वे भाव इम, भाषत कौन सुजान ॥३००॥

चौर्यादिक अपराध जे, फिरते जग के माँहि ।
चोर जान बांध न ले, शंका करते जाहि ॥२०१॥
अपराधी जो है नहीं, फिरता जगत निशंक ।
बंध जाऊँगा इम कभी, चिन्ता होय न शंक ॥२०२॥
त्यों आत्म अपराधी रह, शका बंधन सोय ।
निर अपराधि निशंक रह, ना बंधूगा जोय ॥२०३॥
संसिद्धि सिद्धि साधित जु, इकहि अराधित राध ।
ये राध रहित जो रहे, सोहि आत्म अपराध ॥२०४॥
निर अपराध आत्म सदा, रह निशंक इम जान ।
शुद्ध है सोही हूँ मैं, वर्तें सिद्धि पिछान ॥२०५॥
प्रतिक्रमण, प्रतिशरण; निवृति शुध परिहार ।
गर्हा, निन्दा, धारणा, अठ विषकुंभ अपार ॥२०६॥
'अ' धरिये इन आदि विपे, यों आठों के माहि ।
नाम विष कुंभ पलटके, अमृत कुंभ कहाहि ॥२०७॥

आठवां मोक्ष अधिकार समाप्तः

अथ सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार

उत्पन दरव जिन गुणन से; है अनन्य तिन सोय ।
जिम सु कटकादि पर्याय, कंचन भिन्न न होय ॥२०८॥

जीव जड़ परिणाम सवै, कहे शास्त्र मझार ।
अनन्य तिन परिणाम से, जड़ जीव तिन लार ॥३०९॥

हुये न उत्पन अन्य से, आत्म न कार्य होय ।
उपजावे न ओर को, कारण भी नहि जोय ॥३१०॥

कर्माधार कर्ता हो, करमहु कर्ता धार ।
अन्य रीति सिद्धि न हो, कर्ता कर्म मझार ॥३११॥

होय नशै आतम यहै, प्रकृति निमित सु जोय ।
तिम प्रकृति हु आत्म से, उपजै विनसे सोय ॥३१२॥

इम अन्योन्य जु निमित से, होय उभय का बंध ।
इससे उत्पन होंय सब, यह संसार रू फन्ध ॥३१३॥

होऊँ प्रकृति निमित ही, नशू भी त्यों भाय ।
कुदिष्ट अबुध असंयत वह, तजे न जिय जब लाय ॥३१४॥

मुंचे अनन्त कर्म फल, ज्ञायक आतम होय ।
दर्शक मुनिहु संज्ञा है, रहित बंध से सोय ॥३१५॥

वेदे अबुध करम फलहि, थिति प्रकृति सुभाय ।
भोगे न उदित कर्म फल, वह तो रहे जनाय ॥३१६॥

छोड़े न प्रकृति अभव्य, पढ़ शास्त्र सद् रीत ।
अहि न होय निर्विष कदा, मिष्ट दुग्ध को पीत ॥३१७॥

मिष्ट कडुक बहु भाँति के, फल कर्मन के जान ।
बुध विरक्त तिनसों रहे, यों सु अवेदक मान ॥३१८॥

बुद्ध बहु भाँति कर्म को, करे न, नहि वेदाय ।
बंध, फल, कर्म शुभाशुभ, पै वह रहे जनाय ॥३१९॥

कारक वेदक है नही, नेत्रवत ज्यों ज्ञान ।
कर्मोदय रू बंध मुकति, निर्जराहु को जान ॥३२०॥

लोक कहे विष्णू करै, चो गति के ये जीव ।
ज्यों मुनि मत षट काय जिय, कर्ता आत्म कदीव ॥३२१॥

दिखे न अन्तर उन विषै, बनें एक सिद्धांत ।
कर्ता विष्णु लोक कहे, त्यों आत्म, मुनि मतांत ॥३२२॥

देव नर असुर लोक के, कर्ता होंय सदीव ।
यों श्रमणहु अर लोक का, दिखे न मोक्ष कदीव॥३२३॥

अतत्व विद विवहार वच; गहे, कहे पर आप ।
पै वुध जानें नियत से, पर ना रंच कदाप ॥३२४॥

ग्राम, देश, पुर राष्ट मम; कहे जगत में कोय ।
हैं न वे तसु ताके यों, मोहित कह निज सोय ॥३२५॥

इम जानत ज्ञानीहू, कह पर दरव जु आप ।
पर द्रव जो निजहि करै, नियम कुदृष्टि साप ॥३२६॥

पर दरव लोक श्रमण के, जानत कर्तत भाव ।
पै नहि है पर दरव मम, मूढहि, बुध दरसाव ॥३२७॥

मिथ्यात प्रकति ही जिय, करे मिथाती जोय ।
इम तुम मत कर्ता भई, भाव मिथ्यात्व सोय ॥३२८॥

वा पुगल दरव के करे, तहाँ मिथ्यात्व जीव ।
मिथ्या दृष्टि होय न जिय, पुद्गल होय सदीव ॥३२९॥

वा जिय प्रकति उभय मिल, पुगल मिथात कराँय ।
फल तसु भोगे उभय किम, द्वै मिल किया जुभाय ॥३३०॥

वा जिव प्रकति उभय ना, पुगल मिथात कराँहि ।
बने वह भात्र पुगल ही, किस सो मिथ्या नाँहि ॥३३१॥

जिय अज्ञानी कर्म वश, त्यों ज्ञानिहु तसु जान ।
कर्म सुलावे जीव को, वही जगावत मान ॥३३२॥

जिय होय सुखी कर्म वश, कर्महि दुःख दिखाय ।
होत मिथ्याती कर्म हुँ, असंयम वहि कराय ॥३३३॥

उर्द्ध तिर्यक लोक में, रू अधो लोकहु जाय ।
जो जितना सव शुभाशुभ, सोहू करम कराय ॥३३४॥

करता दाता हरताहु, करै सो कर्म कराय ।
यों याते सर्वहि जीव, सिद्ध अकारक भाय ॥३३५॥

पुंवेद कर्म तिय चहै, नर, स्त्रीवेद चाय ।
आचार्य परम्परा से, रही श्रुति योंह आय ॥३३६॥

कर्महि इच्छै कर्म को, कारण यही कहाहि ।
इम हम मत से जिय कोय, अविरम चारिहु नाँहि ॥३३७॥

पर मारे, मरें पर से, प्रकति ही सो जोय ।
नाम कर्म परघात इम, कहा अर्थ इस सोय ॥३३८॥

ना उपघातक जीव यों, हमरे मत के माँहि ।
कर्महि कर्म को मारै, ऐसा दिया बताहि ॥३३९॥

प्ररूपै यों श्रमणहु, साँख्य मतानुसार ।
उन मत प्रकति ही करै, आत्म अकारक कार ॥३४०॥

मम आत्म ही आत्म करै, जो हो तुझ मत माँहि ।
यहू मिथ्या स्वभाव तुम, इस जानन से भाहि ॥३४१॥

नित्य असंख प्रदेशी, आत्महि शास्त्र बताँय ।
तासें हीनाधिक वह, होय न किया कराय ॥३४२॥

जिय जिव रूप विस्तारहु, लोक मत खलु जान ।
किम तद हीनाधिक होय, क्यों दरवात्म करान ॥३४३॥

थिति ज्ञान सुभाव रहे, ज्ञायक भाव जु मान ।
तोहु आत्म स्व आत्म को, यों ना करै कथान ॥३४४॥

नष्ट कुछ पर्याय से, नशै न कुछ से जीव ।
करै वही वा अन्य ही, यों न इकान्त कदीव ॥३४५॥

नष्ट कुछ पर्याय से, नशै न कुछ से जीव ।
वेदे वह वा अन्य ही, यों न इकान्त कदीव ॥३४६॥

करे न वेदे जो जिया, यों जिसका सिद्धांत ।
जिय है मिथ्या दृष्टि वह, इम अर्हंत मतान्त ॥३४७॥

अन्य करै अनहि वेदे, यों जिसका सिद्धांत ।
जिय है मिथ्यादृष्टि वह, इम अर्हंत मतान्त ॥३४८॥

शिल्पी कर्म करते हू, होय न तन्मय जोय।
त्यों कर्म करते जीवहु, पुद्गल मय न होय ॥३४९॥
शिल्पी करणों से करै, होय न तन्मय जोय।
त्यों मन वच कायहु करै, तन्मय जिया न होय ॥३५०॥
शिल्पी करणों को गहे, होय न तन्मय जोय।
गहे मन वच काय करण, तन्मय जिया न होय ॥३५१॥
भोगत शिल्पी कर्म फल, होय न तन्मय जोय।
त्यों भोगत कर्म फल जिय, तन्मय तहाँ न होय ॥३५४॥
यों जो मत विवहार का, कहने योगहि जान।
परिणाम विषयकहि सुनो, निश्चय वचन सुजान ॥३५३॥
चेष्टा रूप कर्म करै, शिलिप अनन्य सु सोय।
जिय हू अनन्य कर्म से, परिणाम मय जु होय ॥३५४॥
कर चेष्ट नित दुखित शिलिप, पै अनन्य दुख जोय।
त्यों चेष्टमान दुखित जिय, है अनन्य दुख सोय ॥३५५॥
सेटिका है न अन्य की, सेटिका निजहि माँहि।
ज्ञायक ज्ञायक ही है, ज्ञायक पर का नाँहि ॥३५६॥
सेटिका है न अन्य की, सेटिका निजहि माँहि।
दर्शक दर्शक ही रहे, दर्शक पर का नाँहि ॥३५७॥
सेटिका है न अन्य की, सेटिका निजहि माँहि।
संयत संयत ही रहे, पर का संयत नाँहि ॥३५८॥

सेटिका है न अन्य की, सेटिका निजहि माँहि ।
दर्शण दर्शण ही रहे, पर का दर्शण नाँहि ॥३५९॥

ज्ञान दर्शण चारित में, यों निश्चय उपदेश ।
थोड़े में विवहार का, सुनो कथन का वेश ॥३६०॥

सेटिका निज स्वभाव से, पर को स्वेत कराव ।
ज्ञाता हू पर दरव को, जाने निज स्वभाव ॥३६१॥

सेटिका निज स्वभाव से, पर को स्वेत कराव ।
जीवहू पर द्रवण को, देखत निज स्वभाव ॥३६२॥

सेटिका निज सुभाव से, पर को स्वेत कराव ।
ज्ञाताहू पर दरव को; त्यागत निज स्वभाव ॥३६३॥

सेटिका निज सुभाव से, पर को स्वेत कराव ।
समकितीहु पर दरव को, सरधे निज स्वभाव ॥३६४॥

ज्ञान दर्शण चारित में, यों बिवहार कथान ।
अन्य पर्यायों में भी, इसी भाँति से जान ॥३६५॥

दर्शन ज्ञान रु चारित, लेशहु नाहि अजीव ।
उन विषयन में यो आत्म घाते कहा कदीव ॥३६६॥

दर्शन ज्ञान रु चारित, रंच न कर्मन माँहि ।
जड़ करमन में यों आत्म, क्या वह, घात कराहि॥३६७॥

दर्शन ज्ञान रु चारित, रच न काया माँहि ।
जड़ काया में यों आत्म, क्या वह घात कराहि ॥३६८॥

दर्शन ज्ञान चरित का, कहा घात जँह सोय ।
तहाँ पुदगल द्रव्य का, लेशहु घात न होय ॥३६९॥
निश्चय एकहु जीव गुण, पर दरवन में नाँहि ।
समकिती यों विषयन में, धरत न राग कदाहि ॥३७०॥
जिय-केहि, राग, रुष, मोह; हैं अनन्य परिणाम ।
शब्दादि विषयन में इम, नहि रागादिक काम ॥३७१॥
अन्य दरव से अन्य के, सके न कर गुण जोय ।
निज सुभाव यों सब दरव, होय उत्पन्न सोय ॥३७२॥
विविध वच निन्दा थुति मय, परिनय पुदगल सोह ।
आपहि हेतु सुन अबुध, धरै तोष अरु कोह ॥३७३॥
शब्द परिणित पुदगल गुण, जो भिन है तुझ सोंह ।
कहा न कुछहु मूढ़ तुझे, अबुध, करे किम कोह ॥३७४॥
शुभ अशुभ शब्द ना कहें, मोय सुनहु तुम आय ।
श्रवण गोचर शब्द को, आतम गहे न जाय ॥३७५॥
शुभ अशुभ रूप ना कहें, मुझ देखहु तुम आय ।
नयना गोचर रूप को, आतम गहे न जाय ॥३७६॥
शुभ अशुभ गंध ना कहें, मुझ सूंघहु तुम आय ।
घिरान गोचर गंध को, आतम गहे न जाय ॥३७७॥
शुभ अशुभ रसहु ना कहें, मोय चखहु तुम आय ।
रसना गोचर रसहु को, आतम गहे न जाय ॥३७८॥

शुभ अशुभ परश ना कहें, मुझ परसहु तुम आय ।
काय गोचर स्पर्श को, आतम गहे न जाय ॥३७९॥

शुभ अशुभ गुणहु ना कहें, मुझ जानहु तुम आय ।
बुद्धि गोचरा गुनहि को, आतम गहे न जाय ॥३८०॥

शुभ अशुभ दरव न कहें, मुझ जानहु तुम आय ।
बुद्धि गोचर दरवहि को, आतम गहे न जाय ॥३८१॥

इम जानतहु मूढ़ जिया, धरै न उपशम भाय ।
पर ग्रहण का मन करे, शिव बुद्धी विन पाय ॥३८२॥

बहु विस्तरित पूर्व कृत, कर्म शुभाशुभ भान ।
उनसे निवर्तें जिय को, प्रतिकर्मनहिं सुजान ॥३८३॥

भावि में कर्म शुभाशुभ, बान्धे जिय जिस भाव ।
तिनसे निवर्तें जो जिय, प्रताखान सु राव ॥३८४॥

बहु विस्तरित शुभाशुभ, उदय कर्म इस काल ।
उन दोषहि जो चेतता, आतम आलोचन भाल ॥३८५॥

प्रतिक्रमण प्रत्याखान, आलोचन हू सोय ।
धरै जू सबहि सदा खलु, चारित साँचा होय ॥३८६॥

निज रूप कर्मफल करे, फल कर्म सु वेदात ।
पुनि दुख बीज करम जिया, बाँधे वह अठ जात ॥३८७॥

माने मैं करूँ करमफल; फल कर्म सु वेदात ।
पुनि दुख बीज करम जिया, बाँधे वह अठजात ॥३८८॥

सुखी दुखी जो होत है, फल कर्म सु वेदात ।
पुनि दुख बीज करम जिया, बाँधे वह अठ जात ॥३८९

है न ज्ञान ग्रन्थ में, जाने ग्रन्थ न लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९०॥

है नहि ज्ञान शब्द में, शब्द न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९१॥

है नहि ज्ञान रूप में, रूप न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९२॥

है नहि ज्ञान वर्ण में, वर्ण न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९३॥

है नहि ज्ञान गंध में, गंध न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९४॥

है न ज्ञान रसहु विषै, रस ना जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९५॥

है न ज्ञान स्पर्श में, स्पर्श न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९६॥

है नहि ज्ञान कर्म में, करम न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९७॥

है नहि ज्ञान धर्म में, धरम न जानत लेश ।
उभय भिन अन्योन्य है, भापी इम परमेश ॥३९८॥

ज्ञान न रंच अधर्म में, अधर्म जानत नाहिं।
उभय भिन अन्योन्य है, भाषी इम सुगताहि ॥३९९॥
है नहि ज्ञान काल में, काल न जानत लेश।
उभय भिन अन्योन्य है, भाषी इम परमेश ॥४००॥
है नहि ज्ञान गगन में, गगन न जानत लेश।
उभय भिन अन्योन्य है, भाषी इम परमेश ॥४०१॥
अधवसान न ज्ञान है, कहा अचेतन जोय।
उभय भिन अन्योन्य है, भाषी इम जिन सोय ॥४०२॥
सदा सुजीव जाने इम, ज्ञायक ज्ञानि मान।
ज्ञान ज्ञायक अभिन है, ऐसी करो पिछान ॥४०३॥
दीक्षा संयम समकिती, अंग पूर्वगत मान।
ज्ञानहि धर्म अधर्म है, जानत सकल सुजान ॥४०४॥
आतम अरूपी होय जिस, खलु आहारक नाहि।
वह पुदगल मय होन तें, अहार रूपी ठाहि ॥४०५॥
गहे सके ना तज सके, पर द्रव्य जो होय।
प्रायोगिक वैश्रसिक गुण, कोइ न आतम सोय ॥४०६॥
यों इम आतम शुद्ध जो, गहे नहीं वह लेश।
तिम छोड़े ना रंच वह, जड़ जीवन के वेश ॥४०७॥
मुनि लिंग रु ग्रही लिंग, विविध भाँति के जोय।
गहकर कहवत मूढ़ जन, यही मोक्ष मग होय ॥४०८॥

लिंग मोक्ष मग है नहीं, छाँडे अर्हंत देव।
वर्तत निर्मम देह में, करे त्रिरतनहि सेव ॥४०९॥

मुनि लिंग रु ग्रही लिंग, राह मोक्ष के नाहि।
दर्सण ज्ञान चारितहि, है जिनमत के माहि ॥४१०॥

तज जो लिंग धरै जु इम, मुनि ग्रही इस लोय।
त्रिरत्न जो है मोक्ष मग, उसहि आत्म संजोय ॥४११॥

आत्म मोक्ष मग थापके, कर ध्यान उस सोय।
तहा विहर नित अनुभवो, पर दरवहु मन खोय ॥४१२॥

मुनि लिंग रु ग्रही लिंग, विविध भाँति के होय।
ममता तिन में धरत जे, समयसार ना जोय ॥४१३॥

मोच्त मार्ग लिंगहु उभय, कहे सु नय विवहार।
पै निश्चय मानै नहीं, मोक्ष राह में सार ॥४१४॥

पढे समयसार ग्रन्थ, अर्थ तत्व से जान।
तद् अर्थहि थिर होय जो, पावै सौख्य महान ॥४१५॥

कवि विनंती

सातें सित वैसाख की, लीना काज पसार।
सतक वीस चौदह छठी, जेठ भँवर की धार ॥४१६॥

लश्कर मध्य प्रदेश में, 'सागर' पाया पार।
अनुज वसन्त योग जुटा, रचना भई अपार ॥४१७॥

यथा शक्ति बुध बुद्धिबल, प्रभो कुन्द परसाद ।
'सागर' चूक निवारके, लीजो शुद्ध सवाद ॥४१८॥
वैभव चित्त सँभार के, करे भव्य जो पाठ ।
जगत निवर्तें आपको, रहें न करमा आठ ॥४१९॥
परम मंगल ग्रन्थ यह, सुधानन्द सुख खान ।
अमर अखंड अनंतमय, पद पावे अमलान ॥४२०॥

इति श्री समयसार पद्यानुवाद

———



नमो अनेकान्ताय

श्री प्रवचनसार

का

पद्यानुवाद

कवि प्रशस्ति

विघन हरण मंगल करन, परम सौख्य दातार ।
करम फन्द ध्यावत कटत, वीतराग अविकार ॥ १ ॥

श्रीमद कुन्द कुन्द प्रभु, रच्या प्रवचन-सार ।
टीका तत्व - प्रदीपहु, अमरचन्द आचार ॥ २ ॥

बोले श्री मूल शंकर, स्व पर को हितकार ।
करो पद्य मय मूल पद, देश भाष में सार ॥ ३ ॥

जाग्या भाव अन्तर पट, सुन सुवचन ततकार ।
परमेष्टी अनुवाद से, रचूँ पद्य कलिहार ॥ ४ ॥

मूल ग्रन्थ पद्यारम्भ

ज्ञान तत्व प्रज्ञापन अधिकार

तीर्थ रूप कर्ता धरम, दिया घाति मल खोय ।
सुर नर असुरेश वंदित, वन्दों वीर जु सोय ॥ १ ॥

जिनवर सुध सद्भाव मय, सब सिद्धन के साथ ।
पंचाचारी श्रमणहुँ, नमन करु धर माथ ॥ २ ॥
कर वन्दन उन सर्व की, नर क्षेत्र में जोय ।
सहित समुदाय अरहन्त, भिन भिन वंदू सोय ॥ ३ ॥
सिद्ध सकल अरहन्त इम, आचारज मुनि जोय ।
अवर उपाध्याय प्रभू, नमन करूँ कर दोय ॥ ४ ॥
शुद्ध दर्शन ज्ञान मय, आश्रम उनका पाय ।
साम्य भाव धारूँ सदा, साधन शिव सुख दाय ॥ ५ ॥
दर्शण ज्ञान प्रधान, धारैं चारित जोय ।
लहें मुकति सुरपति विभव, मनुज असुरपति होय ॥ ६ ॥
चारित ही खलु धर्म है, धर्म साम्य को जान ।
क्षोभ मोह विन भाव जिय, कहा साम्य भगवान ॥ ७ ॥
जो भाव दरव परिणमें, होय तहाँ तिस रूप ।
यों धर्म परिणित आत्महि, समझो धर्म सरूप ॥ ८ ॥
जिय परिणामी होन तें, करै शुभाशुभ भाव ।
तब तिन रूप बने वही, शुद्ध करे शुध राव ॥ ९ ॥
विन परिणाम दरव न जग, दरव न विन परिणाम ।
वस्तु दरव गुण पर्याय, सह असितत सब ठाम ॥ १० ॥
धर्मी शुद्ध उपयोगी, पावै सुख निरवान ।
पै शुभ उपयोगी जिया, लहे सुरग सुख थान ॥ ११ ॥

तिरयन्च कुनर नारकी, अशुभ उदय जिय होय ।
वहु विधि दुख पीड़ित सदा, अति भर में जग सोय ॥ १२ ॥
आत्मोत्पन्न अतीन्द्रिय, सुक्ख अनन्त अनूप ।
है अटूट अतिशय सहित, सुध उपयोगी रूप ॥ १३ ॥
सुविदित सूत्र पदार्थ मुनि, सुख दुख में सम होय ।
तपी विरागी संयमी, सुध उपयोगी जोय ॥ १४ ॥
घाति निवारे सहज में, शुध उपयोगी जीव ।
जानि ज्ञेय पदार्थ को, वह सब रूप सदीव ॥ १५ ॥
होय सर्वज्ञ आत्म वह, पूजे लोक पतेश ।
स्वयमेव हुआ होन तें, स्वयंभू कहँ जिनेश ॥ १६ ॥
उस उत्पाद विनाश विन, उत्पादहु अविनाश ।
उत्पाद रु ध्रौव्य व्यय, रह समवाय जु पास ॥ १७ ॥
काहू परयाय उत्पाद, होय किसी से नाश ।
रहे किसहु खलु ध्रुव वह, पदार्थ मात्र सुभाश ॥ १८ ॥
घाति क्षय अतीन्द्र जो, वर वीरज वहु तेज ।
करे परिणामन वह सदा, ज्ञान सुखहु की सेज ॥ १९ ॥
है ना सुख दुख देहगत, ज्ञानी केवल सोय ।
भइ अतीन्द्रियता उदय, उसी हेतु इम जोय ॥ २० ॥
सर्व द्रव्य पर्यायें, अवग्रह क्रम विन जान ।
खलु ज्ञान परिणामिन से, प्रतछ केवली भान ॥ २१ ॥

सब इन्द्रिय गुण पूरित, अक्षा तित सब ठौर।
ज्ञान रूप आपहि भये, परोक्ष नाहि सु और ॥ २२ ॥

ज्ञान प्रमाण आत्म है, ज्ञान गेय प्रमान।
ज्ञेय लोकालोक कहा, ज्ञान सर्वगत जान ॥ २३ ॥

आत्म न ज्ञान प्रमाण है, जिसके मत नाहि।
तो ज्ञान हीन नियत वह, वा अधिका हो जाहि ॥ २४ ॥

जड़ वन ज्ञान लखे ना, ज्ञान हीन जिव मान।
अधिका जिया ज्ञान से, किम लखे विन ज्ञान ॥ २५ ॥

जग वस्तु सब जिनवर में, जिनवर वस्तु थाहि।
ज्ञान विषय ही वस्तु सब, ज्ञान कहा जिन माहि ॥ २६ ॥

ज्ञानहि आतम जिन कहैं, विन तसु अन्य न ठौर।
ज्ञान आत्म रु वोहू वह, अन्य गुणनतें और ॥ २७ ॥

ज्ञान सुभावी आत्म है, ज्ञेय वस्तु को जान।
वर्ते न रूपि नयन में, ज्ञेय आत्म तिम मान ॥ २८ ॥

नयन रूप वत आत्म नित, अक्षतित ज़ु होय।
लखत जानत स्पर्श विन, ज्ञेय जगत में जोय ॥ २९ ॥

पय पड़ इन्द्र नील मणि, वर्ते तॅह निज कान्त।
ज्ञानहु जिम ज्ञेय लखे, वर्तत नय ज़ु भ्रान्त ॥ ३० ॥

ज्ञान में न होंय वस्तु तो, ज्ञान न सव गत भाय।
ज्ञान सर्वगत होय जो, क्यों न वस्तु उस थाय ॥ ३१ ॥

ना मुंचे गहे केवलि, परमय नहि परिणात ।
निर अविशेप समन्त मय, देखत सवै जनात ॥ ३२ ॥
आत्महि श्रुत से जाने, नियत ज्ञायक भाव ।
श्रुत केवलि ताहि कहें, जगदर्शी ऋषि राव ॥ ३३ ॥
पुगल दरव मय वचन से, सूत्र भणे जिनराय ।
ताकी ज्ञप्ति ज्ञान है, सु श्रुत ज्ञान कहाय ॥ ३४ ॥
ज्ञान से ज्ञायक जिव नहि, ज्ञायक ही है ज्ञान ।
वही तिस रूप परिनमै, ज्ञान थिति, वस्तु जान ॥ ३५ ॥
इम तिविधि दरव ज्ञेय है, जीव ज्ञान कहाय ।
स्वात्म अर पर रूप दरव, है परिणामी भाय ॥ ३६ ॥
सद असद भूत पर्याय, द्रव्यों की जो होय ।
ज्ञानमहि अक्रम झलके, वर्तमान वत जोय ॥ ३७ ॥
पर्यायें जो हुई नहि, होकर भई जु नाश ।
असद भूत पर्याय सब, ज्ञानहि करें जु वास ॥ ३८ ॥
पर्याये जो हुई नहि, होकर भई जु नाश ।
झलके ना जो ज्ञान में, दिव्य कहे को जास ॥ ३९ ॥
इन्द्री गोचर वस्तु को, इहादि जाने जोय ।
वस्तु परोक्षहि जानना, कहा अशक्य जु सोय ॥ ४० ॥
अप्रदेश रु सप्रदेश, मूर्त अमूर्त अजात ।
जाने नष्ट पर्यायहु, ज्ञान अतींन्द्र कहात ॥ ४१ ॥

ज्ञाता ज्ञेय मय परिनय, तो न क्षायक ज्ञान ।
कर्म कोहि वह अनुभवै, भाषी श्री भगवान ॥ ४२ ॥

करम का उदय नियम से, कहा सु जिन जग जीव ।
तवै राग रुप मोह कर, अनुभै बंध सदीव ॥ ४३ ॥

निषधा स्थान रु विहार, इच्छा विन, उपदेश ।
होय उदय अरहन्त के, त्यो तिय माया भेष ॥ ४४ ॥

क्रिया अर्हत औदयिकी, पुण्य योग से जान ।
विन मोहादिक होन तें, तसु क्षायिकी मान ॥ ४५ ॥

शुभाशुभ रूप जीव जो, परिनय न निज सुभाव ।
तो उन सवही का यहां, हो सन्सार अभाव ॥ ४६ ॥

उदित अनुदित विचित विषम, लखे अर्थ सब जोय ।
युगपद सव प्रदेश से, ज्ञान क्षायिक सोय ॥ ४७ ॥

त्रेकालिक रु तिलोक के, अर्थ न युगपद जान ।
सक्य न तसु पर्याय सह, एक दरव का ज्ञान ॥ ४८ ॥

जो अनन्त पर्याय मय, लखे न जिय इक जोय ।
पुनि किम युगपद लखे वह, वस्तु अनन्ती सोय ॥ ४९ ॥

अर्थ अवलम्ब क्रम से, उदय आत्म का ज्ञान ।
सर्वगत नित न जानिये, ना चायिक हू मान ॥ ५० ॥

वस्तु सकल त्रिकाल में, विविध विषम सव थान ।
लखे युगपद ज्ञान जिन, अहो ! सुमहिमा ज्ञान ॥ ५१ ॥

उपजै गहे न परिणामै, वस्तु रूप में जोय।
इम अर्थहु जानत जिया, कहा अवंधक सोय ॥ ५२ ॥
ज्ञान दरव मूर्त अमूर्त, अच्च अनक्षहु जान।
सुखहू में यों भेद है, गहो तहाँ परधान ॥ ५३ ॥
मूर्त माँहि अनअच्च को, प्रच्छन्न मूर्तहु माँहि।
स्वपर सब ही को देखे, ज्ञान प्रतछ कहाहि ॥ ५४ ॥
अरुपि जिय, मूर्त तन लह, मूर्त देह से सोय।
योग्य मूर्त जाने कदी, कदी न जाने जोय ॥ ५५ ॥
वरण फरस रस गंधये, शब्दहु पुदगल जान।
इन्द्री विषय होयहु वे, अक्ष न युगपत भान ॥ ५६ ॥
इन्द्री आतम सुभाव नहि, की पर दरव बखान।
आतम प्रतच्च होय किम, द्वारा इन्द्री ज्ञान ॥ ५७ ॥
अर्थ ज्ञान पर से जो, कहें परोक्ष पुमान।
जीव ही से जाने पै, है प्रतक्ष सो ज्ञान ॥ ५८ ॥
विस्तरित अर्थ अनंता, विमल आप से जात।
समन्त अवग्रहादि विन, ज्ञान परम सुख गात ॥ ५९ ॥
ज्ञान केवल ही सुख है, परिणामहु उस जान।
घाति कर्म क्षय होन ते, कहें अखेद सुजान ॥ ६० ॥
ज्ञान अर्थान्त को लहे, भइ अनिष्ट सब नास।
दर्शण लोकालोक में, इष्ट जु आया पास ॥ ६१ ॥

घाति नशन ते सुक्ख उन, हुआ सु परम महान ।
सुन अभव्य सरधै नही, भव्य जु देवत मान ॥ ६२ ॥

सहज इन्द्री पीडित जे, चक्री असुर सुरेश ।
उन दुख ना सह सकन ते, रमते विषय विपेश ॥ ६३ ॥

सहज दुख जाने तिन्है, रमते विषयों माहि ।
जो न हो दुख सुभाव उन, विषय न रमते जाहि ॥ ६४ ॥

स्पर्शादि इष्ट विषय लह, परिनय आत्म सुभाव ।
अनुभै न सुख देह तहां, जिय ही ले उस लाभ ॥ ६५ ॥

सुरगहु देह देही को, निश्चय न सुख देत ।
पै सुख वा दुख विषय वश, आपहि आतम लेत ॥ ६६ ॥

दृष्टि जिह हा तिमिर हरा, दीपक का क्या काम ।
सुख मय परिनय आपजिय, विषय कहा तसु ठाम ॥ ६७ ॥

देव, तेज, उष्ण आपहि; रवि जो नभ के माँहि ।
ज्ञान, देव, सुख, लोक में; सिद्ध स्वमेव भाहि ॥ ६८ ॥

पूजा यति, गुरु, देव की, शील दान उपवास ।
इन आदि में लीन जिया, शुभोपयोगी भास ॥ ६९ ॥

होय सुर नर वा तिर्यक, शुभोपयोगी जीव ।
विविध इन्द्रिय सुख लहे, तावत्काल जदीव ॥ ७० ॥

सहज सुख सुरहु के नही, सिद्ध भया उपदेश ।
देह दुख आर्त होंय वे, रमे सु विषय हमेश ॥ ७१ ॥

नर नारक देव तिर्यक, दुख अनुभै तन लाग ।
शुभाशुभ उपयोग जिया, कहा किविधि बड़ भाग ॥ ७२ ॥

पुण्य फल रूप भोग से, चकरी अर सुरराय ।
देह पुष्ट कर लगें वे, सुखी भोग रताय ॥ ७३ ॥

इम विविध पुण्य उदय जो, उपजा निज परिणाम ।
तृष्णा विषय न उपजाय, जिया सुरहु तन ठाम ॥ ७४ ॥

पुनि तृष्णा उदित जिया, तासें दुखिया होय ।
अमरण विषय सुख चहै, दुखार्त भोगत जोय ॥ ७५ ॥

पराधीन बाधा सहित, विषम बंध का हेत ।
क्षनिक इन्द्रिय जनित सुख, यो इम दुख का खेत ॥ ७६ ॥

पुण्य पाप इम सारिखे, मानत है जो नाँहि ।
घोर अपार संसार जु, मोहित हो भरमाँहि ॥ ७७ ॥

धरै न अर्था राग रुष, वस्तु रूप इम जोय ।
देहोद्भव दुख छापावे, शुध उपयोगी होय ॥७८ ॥

पापारंभ तजे जिया, हो शुभ चारित लीन ।
पै मोहादि तजे बिना, शुध आतम नहि चीन ॥७९ ॥

द्रव्य गुण रु पर्याय से, करे अर्हत पिछान ।
मोह लय हो सु नियम से, लेय आतम निज जान ॥ ८० ॥

मोह दूर कर जो लिया, सम्यक तत्व सु आतम ।
तजे राग रुष वह जिया, गहे शुद्ध परमात्म ॥ ८१ ॥

उहि विधि सब अरहन्त जी, कर्मन दिया छपाय ।
कर उपदेश मोक्ष गहा, नमन करू सिर नाय ॥ ८२ ॥

द्रव्यो का मूढ़ भावहि, मोह कहा वह जीव ।
सु अवछन राग रूप धरै, होय क्षुब्ध सदीव ॥ ८३ ॥

राग रूप वा मोह रूप, परिणमात जो जीव ।
वंधे विविध, तातें सब ही, है क्षय योग सदीव ॥ ८४ ॥

करुणा भाव नर तिर्यक, विषयण संगति जोय ।
अयथा गहना वस्तु का, मोह चिह्न है सोय ॥ ८५ ॥

जिन शासन प्रतक्षदिभि, जाने अर्थ सुनीत ।
निश्चय मोह छपाय वह, पढ़िये शास्त्र सुरीत ॥ ८६ ॥

द्रव्य गुण अरु पर्याय, कहा अर्थ तिन नाम ।
उन आत्म दरव जिन कहा, गुण पर्यायहु धाम ॥ ८७ ॥

जिन उपदेश सु पाय के, हने राग रुप मोह ।
होय मुक्त सब दुःखो से, अल्पकाल में वोह ॥ ८८ ॥

ज्ञान रूप आपहि लखे, पर को पर में जोय ।
संयुक्त निज निज दरव से, मोह छपावे सोय ॥ ८९ ॥

यों निर्मम होना चहै, कर निज आगम पान ।
गुण के द्वारा दरव में, निज पर करो पिछान ॥ ९० ॥

सत्ता संयुत सविपेश, सरधै न वस्तु जोय ।
श्रमण पदहु श्रमण नहि, धर्म न उद्भव होय ॥ ९१ ॥

मोह दृष्टि जिस नाशी, है आगम निष्णात।
त्रिराग चारित आरूढ़, कहा धर्म मुनि जात ॥ ९२ ॥

ज्ञान तत्व प्रज्ञापन नाम प्रथम श्रुत स्कन्ध समाप्तः

अथ ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन अधिकार

अर्थ द्रव्य सरूप है, द्रव्य गुणात्मक जान।
हो पर्याय, गुण दरवहु, पर रत मूढ़ पिछान ॥ ९३ ॥
जिय जानो पर समय में, जो पर्यायहि लीन।
आत्म सुभाव में थिति जो, स्व समय में तसु चीन ॥ ९४॥
उत्पाद व्यय ध्रुव सह, विन छोड़े निज भाव।
गुण युक्त परयाय सहित, द्रव्य कहा तसु नाव ॥ ९५ ॥
उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण रु त्रिविध पर्याय।
इजुत दरव सद्भावनित, वही स्वभाव कहाय ॥ ९६ ॥
धर्म देशणा खलु कहा, महन्त जिनवर थोक।
सत लक्षण सामाण्य इक, त्रिभिन दरव जो लोक ॥ ९७ ॥
दरव सुभाव सत सिध है, कहा नियत भगवान।
आगम हु सिध यों, है वो; पर समयी विन भान ॥ ९८ ॥
उत्पाद व्यय ध्रुव सह, है जु दरव परिणाम।
सोहि अर्थ स्वभाव है, सुथिति दरव सत ठाम ॥ ९९ ॥

उत्पाद न हो भंग बिन, भंग न बिन उत्पाद ।
भंग उत्पाद नित बने, ध्रुव अर्थ परशाद ॥१००॥
ध्रुव उत्पाद अरु भंग, परयायहु वर्ताय ।
पर्याय हो दरवहि खलु, इम सब दरव कहाय ॥१०१॥
उत्पाद भंग ध्रौव्य, नामक अर्थहि संग ।
इक मेक दरव सम समय, खलु द्रव्य त्रिअंग ॥१०२॥
इक उपजे कोई नशे, दरव पर्याय जोय ।
फिरहु दरव नशे नहीं, ना वह उपजें सोय ॥१०३॥
द्रव्य इक गुण पर्याय जु, पलटै अन्यहु आप ।
सता अभिन तिनसों रहे, उनहि दरव मय थाप ॥१०४॥
सत न हो तो बने असत, दरव रहे किस भांति ।
वा भिन्न हो तोहू किम; यु सता, दरव सुजाति ॥१०५॥
पृथक्त्व भिन प्रदेश है, अन्यत्व अतद भाव ।
हो किम एक, न उस रूप; कहे वीर जिन राव ॥१०६॥
सत द्रव्य सत पर्याय, सत गुण इम विस्तार ।
उस मय होन अभाव जो, अतद भाव उस लार ॥१०७॥
चो द्रव्य सो गुण है नहि, गुणहु ना दरव माँहि ।
जिन अतद भाव इम कहा, सब अभाव को नाँहि ॥१०८॥
दरव सुभाव परिणाम जु, अभिन्न सत से जान ।
थिति सुभाव दरव सत है, यही कहा भगवान ॥१०९॥

गुण वा पर्याय इम कुछ, विन दरव न जग होय।
पुनि द्रव्यत्व भाव है, दरव स्व सत्ता जोय ॥११०॥
दरव पर्याय कथन से, द्रव्य सु स्वभाव जाद।
सदासद भाव सम्बद्ध, लहे सदा उत्पाद ॥१११॥
हुय परिणामित होय जिया, सुर वा मनु सिद्धादि।
पै तिन किम तजे द्रवत्व, तजत न किम अन्यादि ॥११२॥
है न मनु देव तिम सुरहु, मनु सिद्ध है नाहि।
इम विधि होय न जवै किम, अनन्य भाव उपाहि ॥११३॥
दरव कथन सब दरव है, भिन पर्यायहु जान।
रह तन्मय तिस काल में, दरव अनन्य पिछान ॥११६॥
अस्ति नास्ति अवक्त इती, द्रव्य पर्याय पिछान।
काहु में अस्ति नास्ति वने, किस ही तीनों जान ॥११५॥
स्वाभाविक क्रिया विना, उन एसी ना कोय।
हो परम धर्म अफल पै, क्रिया अफल ना जोय ॥११६॥
नाम कर्म निज सुभावहि, जिय सुभाव दे दाव।
नारक मनु तिरयन्च सुर, दे पर्याय कराव ॥११७॥
मनु नारक तिर्यक सुरा, नामहि कर्म उदात।
करम रूप परिनमित जिय, नाहि सुभाव उपात ॥११८॥
छन छन जग जीयन मरण, जिये मरै ना कोय।
उत्पाद ही विनाश जो, उभय भिन्न तिम जोय ॥११९॥

कोय स्वभाव इक रूप, रहे न जगत मझार ।
क्रिया संसरित दरव की, तासु नाम संसार ॥१२०॥
कर्म मलिन आत्महि लहे, कर्म सहित परिणाम ।
तातें कर्म चिपक्के यों, कर्म, परिणाम नाम ॥१२१॥
परिणाम आप आत्म है, जिवमयी क्रिया जोय ।
क्रियाहि कर्म माने जिय; कर्ता कर्म न होय ॥१२२॥
चेतना मय परिनय जिय, जान तीन तसु भेष ।
ज्ञान, कर्म, रु कर्म फल; कही इम श्री जिनेष ॥१२३॥
ज्ञान अर्थ विकल्प है, कर्म जो जिव कराय ।
ताके भेद अनेक हैं, सुख दुख सुफल कहाय ॥१२४॥
परिणामात्मक आत्म है, आत्महिते परिणाम ।
ज्ञान, कर्म, कर्म फल मय, भेद तीन तसु ठाम ॥१२५॥
करम करण रु कर्मफल, कर्ताहू खलु आत्म ।
इम धर मुनि परिनय न पर, पावे वह शुद्धात्म ॥१२६॥
चेतनोपयोग मय जिय, दरव जीव जड़ जोय ।
द्रव्य अचेतन अजिव है, द्रव्यादि पुगल सोय ॥१२७॥
जिय पुद्गल धर्म अधर्म, काल सहित आकाश ।
वह सर्व काल में सदा, लोक नाम तसु भाश ॥१२८॥
भेद संघात परिणमण, पुद्गल जिव मय लोक ।
तासे ध्रौव्य उत्पाद, रु वने भंग अशोक ॥१२९॥

लखे जड़ जीव मय दरव, जिन लिंगों के द्वार ।
जानो मूर्तामूर्त गुण, भिन अतदभाव लार ॥१३०॥

इन्द्री गोचर मूर्त गुण, पुद्गलमय वहु भेद ।
अमूर्त द्रव्य गुण सदा, अमूर्त मय ही वेद ॥१३१॥

शूक्ष्महू पृथ्वी लों सब, फरस वरण रस गंध ।
पुद्गल के ही होंय ये, शब्दहु पुद्गल खंध ॥१३२॥

वर्तना गुण काल दरव, अवगाह जु आकाश ।
अधर्म थान कारणता, धर्म गमनत्व भास ॥१३३॥

आतम का उपयोग गुण, भाषा श्री भगवान ।
इस विधि अमूर्त दरव गुण, कर संक्षेप पिछान ॥१३४॥

असंख प्रदेशी धर्म, नभ जिय पुद्गल काय ।
जानो अधर्महु निज से, अप्रदेशि कालाय ॥१३५॥

है नभ लोका लोक में, धर्म अधर्म जु लोक ।
शेषहु आश्रय काल है, सो जिय पुद्गल थोक ॥१३६॥

है वे नभ प्रदेश जिम, शेष दरव तिम जान ।
अप्रदेशि परमाणु से, प्रदेश उन्भव मान ॥१३७॥

इक प्रदेशो परमाणु, लंघे नभ प्रदेश ।
अप्रदेशी काल दरव, वर्तै जदि निज भेष ॥१३८॥

लंघे जि काल परमाणु, समय कहा लघु चाल ।
उत्पनध्वंसी है समय, पूर्व परा दव काल ॥१३९॥

ठौर जो घेरे इक अणु, नभ प्रदेश सु नाम ।
वह सबहि परमाणुन को समरथ देने ठाम ॥१४०॥

होंय प्रदेश दरव के, समय काल परमान ।
इक दो बहु असंख्यहू, वा अनन्त भी जान ॥१४१॥

पै उस ही इक समय में, उपजै होवे गाल ।
निज स्वभाव में थितिनित, रहे द्रव्य जु काल ॥१४२॥

छन छन नित काल दरवहि, ध्रुव उत्पाद विनास ।
सदभाव तातें ताका, होय आपते भास ॥१४३॥

प्रदेश इक प्रदेश जिस, नियत होय न ज्ञात ।
होय अन्य असि तत्व से, शून्य दरव तसु गात ॥१४४॥

सप्रदेशी द्रव्यों से, समाप्त नित सब लोक ।
जो जाने सो जीव है, चतु प्राण का थोक ॥१४५॥

स्वासोश्वास प्राण बल, इन्द्री आयू धार ।
जीवन के इम विधि यहां प्राण कहे ये चार ॥१४६॥

जियत, जीता रु जियेगा; चतु प्राण से जीव ।
पुद्गल रचित प्राण पै, जानो जीव सदीव ॥१४७॥

कर्म मोहादिक बंधा, जिया प्राण को पात ।
कर्म फल भोगत वह पुनि, नव करम बंध जात ॥१४८॥

मोह शेष से जो जिया, पीड़े प्राण सु जीव ।
ज्ञान वरणादिहु बंधे कथित जु पूर्व सदीव ॥१४९॥

वपु प्रधान विषयों में, तजै न जब लग राग ।
प्राण धरे पुनि पुनि विविध, जिया करम से पाग ॥१५०॥

ध्यावे इन्द्रियादि जीत, आत्म मात्र उपयोग ।
रंजित होय न कर्म से, प्राण करे किम जोग ॥१५१॥

आस्था निश्चय दरव जो अन्य अर्थ उपजाय ।
भेद संस्थानादि सहित, अर्थ जु वह परयाय ॥१५२॥

तिर्यक सुर नारक नरा, नाम उदय जिय होय ।
संस्थान भेदहि से वो, जुदे जुदे अवलोय ॥१५३॥

तिभेद असि तत्त्व निष्पन, सुभाव दरवहु जोह ।
कथित पूर्व जाने जिया, पर में धरे न मोह ॥१५४॥

है आत्म उपयोग मयी, ज्ञान दर्श उपयोग ।
अवर शुभाशुभ होय वह, लखो भेद इम जोग ॥१५५॥

जिया जु अशुभ उपयोगी, करे पाप का बंध ।
संचय पुण्य शुभा करे, उन अभाव निर्बंध ॥१५६॥

जाने जिया जिनेश को, सरधे सिध अनगार ।
धरै अनुकंप जियण में, शुभ उपयोगी कार ॥१५७॥

उग्र कुविचार कुसंगति, मगन जु विषय कषाय ।
कुश्रितु उन्मार्ग लगा, दुष उपयोग कहाय ॥१५८॥

अशुभ रहित शुभ मुक्त ना, अन्य दरव मध्यस्थ ।
ज्ञान सरूपी आत्म में, होऊँ नित ध्यानस्थ ॥१५९॥

न देह, न वचन, मनहु नहि; उन हेतहु में नाँहि।
कराता करता भी नहि, ना अनुमोदक भाहि ॥१६०॥

है पुद्गल मन वच काय, भाषी जिन भगवान ।
पिन्ड परमाणु दरव का, दरव पुद्गला जान ॥१६१॥

हूँ ना पुद्गल मयी मैं, करुँ न पिण्ड सरूप ।
तद देह कर्ताहु नही, ना मैं देहा रूप ॥१६२॥

प्रदेश मात, अप्रदेश; परमाणु अशब्दत्व ।
स्निग्ध वा रुक्ष अनुभवै, द्वि प्रदेशादित्व ॥१६३॥

अणु परिणमन हेतु बने, इकादि अनंत लाग ।
स्निग्धत्व रुक्षत्व वहां, कहें जिन वीतराग ॥१६४॥

स्निग्ध रुक्ष वा सम असम, हाँय अणू परिणाम।
बंधे दु अंश अधिक में, जधन अंश नहि काम ॥१६५॥

दु अंशी अणू बन्धे, चो अंशी से सोय।
रु पाँच सात से बन्धे, स्निग्ध रुक्ष मय जोय ॥१६६॥

स्कंध द्वि प्रदेशादिक, सूछम वा बादार ।
साकार परिणय निज से, भू तेज वायू वारि ॥१६७॥

कर्मत्व योग अयोग जु, बादर सूछम थोक ।
है पुद्गल स्कन्धन से, ठसा ठस सबहि लोक ॥१६८॥

जीवा परिणति पाय के, स्कन्ध कर्मत जोग ।
कर्म भाव को धरे वे, जिव परनाय न थोग ॥१६९॥

करमत्व गत पुद्गल वे, देहान्तर संक्राय ।
पुनि पुनि वने शरीर वे, जिय के आपहि धाय ॥१७०॥
वैक्रियक आहारक है, तैजस कार्मण नाम ।
देहा पुद्गल दरव मय, औदा-रिकहु तमाम ॥१७१॥
असर अरूपी अगंध है, अशब्द विन संस्थान ।
जिय अव्यक्त चेतना मय, अलिंग ग्राही जान ॥१७२॥
अनोन्य बंधे स्पर्शहु, रूपादि मूर्त जोय ।
बांधे किम जड़ कर्म को, जिय जु विपरीत सोय ॥१७३॥
द्रव्य रूपादि गुण सहित, बिना रूप का जोय ।
देखत जानत जिम जिया, त्यों बधहु अवलोय ॥१७४॥
जीवा जो उपयोग मय, विविध विषय को पाय ।
राग रुष वा मोह धरे, तिनसे बंध कराय ॥१७५॥
देखे वस्तु विषयागत, जाने जिय जिस भाव ।
वंधाय कर्म तसु रंजित, भाषें इम जिन राव ॥१७६॥
बंधे पुद्गल स्पर्श सह, रागादिक से जीव ।
अनोन्य अवगाह बंधे, पुद्गल जीव सदीव ॥१७७॥
पुगल काय प्रदेश जिय, आप करे परवेश ।
तिष्ठे जावे यथा विधि, करे बंध तसु देश ॥१७८॥
अरागी मुक्त करम से, रागी तसु बंधाय ।
बंध कथन यह नियत से, जान जीव का भाय ॥१७९॥

है बंध परिणाम सेहि, जान राग रुष मोह ।
मोह द्वेष अशुभहि हैं, राग शुभाशुभ जोह ॥१८०॥
शुभ परिणाम पर पुण्य जु, अशुभ कहा तँह पाप ।
दुख क्षय हेतु समय पर, परहु न जाय कदाप ॥१८१॥
जिव निकाय थावर त्रस, पिरथवी आदि भेद ।
कहे जीव से भिन्न वे, जीवहु भिन तसु वेद ॥१८२॥
जो इम सुभाव जान के, स्व पर करे न ज्ञान ।
यह मम में उस मोह वश, करता अध्यवसान ॥१८३॥
निज भाव को करत जिया, खलु कर्ता निज भाव ।
नहि कर्ता सब भाव पै, जो दरव पुगल लाव ॥१८४॥
पुद्गल मध्य रहके हू, जीया सबही काल ।
न करे न गहे करम जड़, मुँचेहू नहि वाल ॥१८५॥
करता स्व परिणाम का, अभी जो द्रव्य जात ।
गहे जु कर्म धूलि उस, कथम सु बाडि तजात ॥१८६॥
राग रुष युत होय जिया, शुभ अशुभ परनाय ।
ज्ञानावरणादिक रूप, धूलि करम तसु आय ॥१८७॥
राग रुष मोह कषायित, सप्रदेश यह जीव ।
होते धूलि करम लिप्त, बंध जु कहा सदीव ॥१८८॥
यों इम थोड़े में कहा, जीव बंध भगवान ।
कहें निश्चय से यति हू, भिन्न विवहार जान ॥१८९॥

तन धनादि मम में उसहि, तजै न ममता जोय ।
श्रामण्यता को तजे जु, गहे उन्मार्ग सोय ॥१९०॥

मैं न पर जु पर न मेरा, हूँ मात इक ज्ञान ।
इम ध्याय वने ध्याता, जिय जब करे ध्यान ॥१९१॥

दर्शण भूत ध्रुव-अचल, आतम निरालम जान ।
दरव महान अतीन्द है, शुध ज्ञान मय भान ॥१९२॥

सुख दुख शत्रु मित्रजन, तन धन थिर ना जोय ।
उपयोग मय आतमहि थिर, कही जीव के सोय ॥१९३॥

इम ज्ञान होय विसुध जो, अरूपी वा साकार ।
ध्याय आतम परम जोय, करे मोह का क्षार ॥१९४॥

मोहा राग रुष छपाय, सुख दुख में सम होय ।
मुनित्व धारे जो जिया, लह अक्षय सुख सोय ॥१९५॥

मोह मल को छपाय के, विषय विरत हो जाय ।
मन निरोधी थिति सुभाव, ध्यानी आतम कहाय ॥१९६॥

करम घातिय घाति लखे, दरव सरव परतक्ष ।
ज्ञेयान्तगत असंदेहि, करे कोन मुनि लक्ष ॥१९७॥

अनक्ष अक्षातीत हो, विन वाधा सव जोय ।
ज्ञान सुखरत सवातम में, ध्याय परम सुख सोय ॥१९८॥

जिन जिनेन्द्र श्रमण सव, पथ आरूढ़ जु होय ।
भये सिध रु तिस मगहु को, नमन करू कर दोय ॥१९९॥

यों इम विधि इस आतम को, ज्ञायक सुभाव जान ।
निरममता में थिति रहत, तजूं ममत सब ठान ॥२००॥

इति श्री ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन नामक द्वितीय स्कंध समाप्त

अथ चरणानुयोग सूचक चूलिका

जो दुखकर छूटन चहै, पुनि पुनि अरिहन्ताय ।
सिद्ध सुगुरु को नमन कर, अंगो मुनि पद भाय ॥२०१॥
बंधुजन से लेय विदा, तिय सुत परिजन छोड़ ।
ज्ञान दर्शन चारित तप, वीर्याचार सु जोड़ ॥२०२॥
रूप कुल वय गुण विसिष्ट;मुनि, मुनि प्रिय मुनीश ।
धर अनुग्रह गहो मुझे, कहे नवाँय सु शीश ॥२०३॥
मैं न पर परहु न मेरा, कुछ न मुझ लोक माँहि ।
निश्चय धर हो जितेन्द्री, सहज रूप अवगाहि ॥२०४॥
श्मश्रु क कंश लुंचे वे, तज श्रृंगार तजान ।
यथा जात हिंसा विना, लिंग शुद्ध मुनि जान ॥२०५॥
मोक्ष हेतु असहाय है, योग उपयोग शुद्ध ।
मूर्छा रु आरंभ विना, कहा लिंग मुनि बुद्ध ॥२०६॥
नमकर लिंग गहे उभय, परम गुरु से जोय ।
सुनि क्रिया सव्रत मुनी, होय आतम थिति होय ॥२०७॥

व्रत समिति इन्द्रिय रोध, आवश्यक अस्नान ।
थिति भोजन लोंच अचेल, इक भुक्त भू सयान ॥२०८॥

अदंत धावन मूल गुण, खलु कहे मुनि जिनेश।
छेद उपस्थापक कहा, हो प्रमत्त उन वेश ॥२०९॥

दीक्षा दाता होय गुरू, लिंग गहन के काल ।
दु छेद थापक शेपमुनि, हों निर्यायक लाल ॥२१०॥

सजतन चेष्टा काय में, होय छेद मुनिराज ।
आलोचना सह क्रिया, कही तसू जिनराज ॥२११॥

विवहार विज्ञ मुनि निकट, उपयुत छेद जु जाय ।
कर आलोचन करे मुनि, तसु जिम जथा बताय ॥२१२॥

अधिवास विवास रहते, प्रतिबंधन नित टार ।
विचरो श्रामण्य श्रमण, होय छेद से पार ॥२१३॥

ज्ञान दर्शण निवद्ध मुनि, नित सजतन गुण मूल ।
है श्रामण्य सु परिपूर्ण, वर्ते निज में भूल ॥२१४॥

अहार विहार उपाधि में, आवास रु उपवास ।
विकथा पर श्रमणहु मुनि, प्रति बंध रुचि न जास ॥२१५॥

सयन आसन गमन विषै, स्थानादिक मुनिराय ।
अजतन चर्या जो सदा, हिंसा सतत कहाय ॥ २१६॥

अयतचार हिंसा खलू, जिव मरे व जियात ।
सजतना समितिवान के, बंध न हिंसा मात ॥२१७॥

मुनि जु अयत चारी कहा, वध कर्ता षट काय ।
जलहु कमल वत निर्लेप, सजत चारि नित भाय ॥२१८॥

जिय मरण काय चेष्ट से, होवे अथवा नाँहि ।
पै नियत बंध उपधि से, श्रमण तजो सब जाहि ॥२१९॥

बिन निरपेक्ष त्याग मुनि, होय न भाव विशुद्ध ।
हो अविरुद्ध भाव जबै, करम क्षय किम बुद्ध ॥२२०॥

किम न असंयम आरंभ, ममत उपधि सद्भाव ।
पर दरव रत किम कर मुनि, साधे आतम लाव ॥२२१॥

सेवन तजन गहन जु उपधि, छेद न सेव मान ।
काल क्षेत्र जान श्रमण, वर्तो तसु जग थान ॥२२२॥

पैं अल्पहु, हो अनिन्दित; बिन मूर्छा उत्पाद ।
अन इच्छित असंयत जन, मुनि गहो ये उपाद ॥२२३॥

अप्रति कर्मत्व तनहू, संग कहा तन माँहि ।
मोक्ष चहो को जिन भखा, अन्य संग किम भाहि ॥२२४॥

जिन मग जन्म जात लिंग, अवर गुरू उदगार ।
विनय अर पठन सूत्र का, कहे उपकरण चार ॥२२५॥

पर लोक हु अप्रतिवद्ध, निरपेक्ष इजग होय ।
युक्ताहार विहारी जु, बिन कषाय मुनि जोय ॥२२६॥

एषण बिन वहू तप जिय, सजतन मुनि तसु लाभ ।
एषण बिन भिच्छ भिन है, मुनि अनहारी ठाभ ॥२२७॥

केवल देहि मुनि तनहू, है न मम तजै शोभ ।
आत्म शक्ति छिपाये विन, कर सु तप संजोभ ॥२२८॥

यथा लब्ध मधु मांस विन, ऊनोदर इक वार ।
न रसापेक्ष भैक्ष कर, हो खलु दिवा अहार ॥२२९॥

बाल वृद्ध थकित मुनी, जो हो पीड़ित रोग ।
छेद न हो जिम मूल का, धरो आचरण जोग ॥२३०॥

वर्तै श्रम देश उपाधि, क्षमता कालहु पेख ।
अहार वा विहारहु मुनि, अल्प लेपि तसु लेख ॥२३१॥

लह श्रमण इकाग्रता, अर्थ निचयी सु जान ।
सु निश्चय आगमहु बने, आगम चह मुख भान ॥२३२॥

लखे न आगम हीन मुनि, आपा पर को सोय ।
भिक्षु करम क्षपाय किम, विन दरवों के जोय ॥२३३॥

चक्षू आगम साधु के, अवधि देव के जान ।
सब भूतन इन्द्री कही, सबही सिध भगवान ॥२३४॥

विचित्र गुण पर्याय मय, आगम सिध सब जान ।
उन दरवों को मुनि लखै, कर आगम परमान ॥२३५॥

आगम पूर्वक दृष्टि जिस, है न लोक के माँहि ।
कहें न संयम सूत्र तसु; असंयत, मुनि किमाहि ॥२३६

हो न मुक्ति श्रद्धा बिना, आगम कर दरवान ।
लह न अर्थ श्रद्धानिहू, जो सु असंयत वान ॥२३७॥

अबुध कर्म खपाय जो, लाँखा कोटि भवान ।
त्रिगुप्ति से उश्वास में, देय खपाय सुजान ॥२३८॥

रंचहु ममत्व देह में, जिस होय विद्यमान ।
सब आगम धर हो भला, लहे न मुक्ती थान ॥२३९॥

जित कषा समितिगुप्तिधर, इन्द्री संवृत वान ।
ज्ञान दर्शन समग्र मुनि, संयत किया बखान ॥२४०॥

सुख दुख थुति निन्दाजिसे, मित्र शत्रु का भान ।
लोष्ट कांचन जियन मरण, सम जिस मुनि तसु जान॥२४१॥

दर्श ज्ञान चारित में, इक साथ जु असवार ।
लह इकाग्रता शास्त्र मत, मुनित्व पूरम पार ॥२४२॥

पर दरव आश्रय कर मुनि, अज्ञानी हो जाय ।
मोह राग वा रोप कर, करम विविध बंधाय ॥२४३॥

मोह राग रुप ना करे, मुनि पदारथन मांहि ।
विविध करम निश्चय थको, देवत सोहि छपाहि ॥२४४॥

इति श्री मोक्षमार्ग प्रज्ञापन समाप्त

अथ शुभपयोग प्रज्ञापन

शुध शुभ उपयोगी श्रमण, वरने आगम थान ।
शुध उपयोगी निराश्रवा, शेष जु साश्रव जान ॥२४५॥

भक्ति अरहन्तादि विषै, श्रामण्य में जु होय ।
धर्मी जनहु वातसल्य, शुभयुत चर्या सोय ॥२४६॥

मुनि अभ्युत्थान बंदन, सह अनुगमन विनीत ।
श्रम हटाय राग चर्या, सो ना उस निंदीत ॥२४७॥

पूजा श्री जिनराज की, ज्ञान दर्श उपदेश ।
शिष्य गहन उन पोषना, सु खलु सरागी वेष ॥२४८॥

विरोधे त षटकाय नित, जोय श्रमण सुजान ।
करे चतु संघ उपकार, है सराग प्रधान ॥२४९॥

श्रमण वैयव्रत करै, कर पीडित षटकाय ।
वह न श्रमण, है ग्रहस्थ; श्रावक धर्म कहाय ॥२५०॥

है अल्प लेप कर तोहु, निर अपेक्ष उपकार ।
अनुकम्पा से जैन का; ज्ञान दर्श के धार ॥२५१॥

क्षुधा तृषा श्रम रोग कर, लख पीड़ित मुनिराय ।
यथा सक्य वैयाव्रत, करहु साधु चितलाय ॥२५२॥

बाल रोगी वृद्ध गुरू, श्रमण सेव के कार ।
शुभ युत जन से बोलना, ना निन्दित संसार ॥२५३॥

इस शुभ चर्या हो श्रमण, रु ग्रहस्थ अधिकाय ।
परम्परा जु ग्रही लहे, परम सौख्य इम गाय ॥२५४॥

जिम बीज पड़ा भू विविध, विविध फलै ससि काल ।
फलै राग असस्तहु, पात्र भेद वहु चाल ॥२५७॥

रत वस्तु विहित क्षुद्मस्थ, दान विरत नियमात ।
ध्यान पठ कर लह न मोक्ष, भाव सु साता पात ॥२५६॥

है विषय कषाय अधिका, नर परमार्थ अजान ।
कुदेव कुमनुज उपजाय, सेव भलाई दान ॥२५७॥

वरना जव शास्त्रों विषै, विषय कषाय जु पाप ।
हो नर जो उन कर लीन, किम् निस्तारक माप ॥२५८॥

साम्य सु सब धर्मीन हो, रहा जु पाप रुकाय ।
सुमार्गवान नर जानहुँ, सेवक गुण समुदाय ॥२५९॥

शुद्ध शुभयुत अशुभ रहित, दें य लोक को तार ।
धरै भक्ति उन मुनिन जिय, पावत पुण्य अपार ॥२६०॥

अभ्युथान आदि वरतो, पूर्व मुनी को देख ।
गुण अनुसार पुनि उनहूँ करो भेद इम लेख ॥२६१॥

गहो गुणाधिक मुनिन को, अभ्युथान सत्कार ।
अंजलि पोषण उपासन, कर प्रणाम शुभकार ॥२६२॥

ज्ञान संयम तप समृध, सूत्र अर्थ विद् जोय ।
अभ्युथान उपासन मुनि, नमन योग मुनि सोय ॥२६३॥

आतम प्रधान अर्थ का, करे न मुनि सरधान ।
सूत्र संयम तप युत हू, नही श्रमण तसु जान ॥२६४॥

जिन मत थिति मुनि देख तसु, करे द्वेष अपवाद ।
क्रिया करण अनुमत नहीं, हो तसु चारित वाद ॥२६५॥

हीन गुण होय गर्व से, कहे श्रमण निज तान ।
विनय चहे मुनि गुणी से, भरमे जगत महान ॥२६६॥
श्रामण्य अधिक हो करै, वन्दनादि गुण हीन ।
मिथ्या उपयुत होय के, होय चारित विहीन ॥२६७॥
सूत्र अर्थ पद निश्चयी, जित कषाय तपवान ।
तजे न जन संसर्ग जो, कहा न संयतवान ॥२६८॥
निरग्रन्थ पद लेन से, संयम तप युत होय ।
ऐहिक करम वर्तें पुनि, लौकिक संज्ञा जोय ॥२३९॥
मुनि समान के अधिक की, कर संगति गुणवान ।
जो दुख छूटन चहे मुनि, कर निवास उन थान ॥२७०॥
अतत्व गह सुतत्व कहें, धरै जु निश्चय जोय ।
कर्मफल युत भावि वहू, भरमेंगे मुनि सोय ॥२७१॥
पूर्ण मुनित्व स्थिर चित्त, अयथाचार विहीन ।
सत पद निश्चयी सु अफल, करें शीघ्र जग छीन ॥२७२॥
दिया तज परिग्रह उभय, सुरीति अर्थ हु जान ।
विषयाशक्त जो है नहिं, शुद्ध कहा भगवान ॥२७३॥
है शुद्ध दर्शन ज्ञान, श्रामण्यहु शुध मान ।
शुद्धहु सिद्ध हो मोक्ष शुद, नमन करूँ उन जान ॥२७४॥
वर्ते चर्या साकार, अनाकार हू सोय ।
पावे प्रवचन सार फुर, जो इम शासन जोय ॥२७५॥

इति मूल ग्रन्थ समाप्त

कवि विनय

षाढ़ पंचमि कृष्ण की, सुधावार सुख खान ।
चौदह ऊपर वीस शत, विक्रम संवत जान ॥ ५ ॥

मध्य प्रदेश मध्य है, लश्कर नगर महान ।
'सागरचन्द' निज वुध से, रचा कवित अमलान ॥ ६ ॥

छद्मस भूल सुभाव है, परख करो शुध सोय ।
जान न निज को वंचना, ओ शुध धर्मी लोय ॥ ७ ॥

यथा सक्य शुध भाव से, कुन्द गुरू परशाद ।
रची रचना होय सफल, गर्जे आतम नाद ॥ ८ ॥

इति श्री प्रवचनसार कवित्त

समाप्त



श्री परमात्मणे नमः

श्री नियमसार

का

पद्यानुवाद

कवि प्रशस्ति

सतत ओंम वन्दों सदा, मंगलीक शुभ आदि ।
पुनि जिनवाणी शारदा, हरहैं रोग अनादि ॥ १ ॥

विक्रम सम्वत जनमिया, उनन्यास की साल ।
कुन्द कुन्द मुनिराय जी, दिया तिमिर सब टाल ॥ २ ॥

भूल मूल दरशाय के, मूल द्रव्य मझार ।
भव्यन को शिव बोध के, कीना बहु उपकार ॥ ३ ॥

पाहुड़ चौरासी रचे, मूल संघ गण ईश ।
नियमसार को अब यहां, करूँ कवित नत शीश ॥ ४ ॥

(मूल ग्रन्थ प्रारम्भ)

ज्ञान दर्श अनन्त धनी, वीर जिनेशहु नाँय ।
कथित केवलि, सुत केवली; नियमसार कहुँ गाय ॥ १ ॥

मार्ग मार्ग-फल भेद दो, जिन शासन में जोय ।
मारग मुकत उपाय है, कहा मोक्ष फल सोय ॥ २ ॥

करन जोग नियमहु नियम, रतन तीन को भान ।
इतर वताने ना नियम, 'सार' नियम संग जान ॥ ३ ॥

मोक्ष उपावहि नियम है, फल है तसु निरवान ।
कहा नियम त्रिरतन सों, भिन भिन करूँ वखान ॥ ४ ॥

सरधा आगम आप्त की, सह पद समकित भान ।
दोष रहित गुणनिधि सकल, सोही आप्त पिछान ॥ ५ ॥

नींद रोग रति राग तिष, विमय चिन्त रुष खेद ।
जन्म जरा मद अकुल भय, मृतु मोह छुद स्वेद ॥ ६ ॥

केवलादि वर विभव जुत, दोष रहित गुण खान ।
सो अरहन्त परमात्मा, अन्य रूप मत जान ॥ ७ ॥

शुध पूर्वापर दोप विन, वच अर्हत उदगार ।
तत्वारथ वरणण करे, सो आगम निरधार ॥ ८ ॥

जिव पुद्गल धर्म अधर्म, सहित काल आकाश ।
नाना गुण पर्याय मय, दरव नाम षट भाश ॥ ९ ॥

जिव उपयोगी जानिये, ज्ञान दर्श दो भेद ।
ज्ञान सुभाव विभाव मय, यहू दुविधि समवेद ॥ १० ॥

केवल सुभाव ज्ञान जु, है अतीन्द्र असहाय ।
संज्ञान विभाव औरहु, दुविधि भेद तसु भाय ॥ ११ ॥

मति सुत अवधि मन पयय, भेद चार संज्ञान ।
कुमति कुश्रुत कुअवधि मय, ज्ञान विभावहु भान ॥ १२ ॥

दुविधि दर्शनोपयोगहु, जान सुभाव विभाव।
इन्द्रिन के व्योपार विन, है असहाय सुभाव ॥ १३ ॥

चक्षु अचक्षु अवधि सहित, दर्श भेद इम गाय।
स्वपरापेक्ष निरपेक्षहु, चीन उभय परयाय ॥ १४ ॥

चउ विधि विभाव परयाय, नर नारक पशु देव।
होय कर्म उपाधि विना, सहज सदा लख लेव ॥ १५ ॥

भोगभूमिज कर्मधरा, दो विधि मानुप जोय।
भूमि भेद से नारकी, जान सप्त विधि सोय ॥ १६ ॥

चोदह विधि तिरयन्च हैं, देव चार प्रकार।
आगम लोक विभाग से, जान विविध विस्तार ॥ १७ ॥

कर्ता भोक्ता जड़ करम, जान जिया विवहार।
कही नय निश्चय अशुद्ध, जु भाव करम मझार ॥ १८ ॥

जीव परयाय भिन्न भिन, द्रव्यार्थिक से जोय।
अभिन्न नय परयाय से, जान उभय इम सोय ॥ १९ ॥

अजीवाधिकार

अणु अर स्कन्ध भेद दो, पुद्गल कहे जिनेश।
भेद दोय पुनि अणु कहे, जान खंध पट भेप ॥ २० ॥

अतिथूल थूल खंध पट, थूल सूक्ष्महु पिछान।
सूक्ष्मथूल, सूक्ष्महु लख, अति सूक्षम पुनि भान ॥ २१ ॥

अति स्थूल में जानिये, भू पर्वतादि सोय ।
वाही घी जल तेल को, कहे थूल जिन जोय ॥२२॥

तिमिर छाँह आताप को, थूल सूक्ष्म पुनि जान ।
शब्द गंध जु स्पर्श रस, सूक्ष्म स्थूलहु भान ॥२३॥

कर्मवर्गना खंध को, दीना सूक्षम नाम ।
उसहू सूक्षम सूक्ष्म सव, ये जु विभाव सुकाम ॥२४॥

चतुर धातु का हेतु जो, सो कारण परिमाणु ।
स्कन्ध अंतिम भाग को, कार्य परमाणु जाणु ॥२५॥

आदि मध्य अन्त रूप जु, निज सरूप कर सोय ।
अविभागी गह न इन्द्रिय, दरव परमाणु जोय ॥२६॥

इक इक, रस रूप गंध जु; सपरस दोय पिछान ।
ये पुद्गल स्वभाव गुण, आगम किये वखान ॥२७॥

परिणय अन्य अपेक्ष विन, सो परयाय सुभाव ।
बंध रूप हो परिणमन, जानो ताहि विभाव ॥२८॥

परमाणुहि पुदगल दरव, निश्चय करके होय ।
पै कथन व्यवहार से, स्कन्धहु पुदगल जोय ॥२९॥

गमन धर्म, थिति अधर्म जु; निमित पुगल जीवान ।
अवगाहन में नभ निमित, जान सकल दरवान ॥३०॥

दु तिय विधि विवहार काल, समय आवली भेद ।
भूत आवलि अनत गई, सिध संख्या तिम वेद ॥३१॥

जिय से पुगल अनत गुणे, पुद्‌गल समय पिछान ।
कालाणु नभलोक वसें, नियत काल सो जान ॥३२॥

परिणाय-निमित काल दरव; षट द्रव्यन का जान ।
गुण परयाय सुभाविकी, चतु धर्मादिक भान ॥३३॥

काल रहित षट दरव में, अस्ति काय हैं पाँच ।
काय नाम आगम कहा, वहु परदेशी जाँच ॥३४॥

संख्य असंख्य जु अनन्ता, मूर्त प्रदेशहु होंय ।
इक जिय धर्म अधर्म में, असंख्यात अवलोय ॥३५॥

नभ लोकहु असंख्य हैं, जान अनन्त अलोक ।
काल विषै काया नही, इक परदेशी थोक ॥३६॥

पुद्‌गल मूर्तिक जानिये, शेष अमूर्त पिछान ।
चैतन्य भाववान जिय, शेष अचेतन भान ॥३७॥

शुद्ध भावाधिकार

हेय जियादि वाह्य तत्व, आत्म आत्म सत लाधि ।
हैं भिन गुण परयाय जो, उपजी कर्म उपाधि ॥३८॥

थान मान अपमान के, ना सुभाव सत जोय ।
हर्ष अहर्षहु के नही, समयसार के होय ॥३९॥

वँध थान थिति प्रकृति, न प्रदेश अनुभाग ।
थान उदय उस ना कहे, समयसार सुध लाग ॥४०॥

भाव छायक छयोपशम, उदय उपशमहु जोय ।
होय न इस सुध जीव के, भाव कहे इम सोय ॥ ४१ ॥

चतुगति भ्रमण मार्गना, जिव समास कुल योनि ।
जनम मरणहु शोक जरा, नाँहि शुद्ध जिय भोनि॥ ४२ ॥

दंड द्वन्द ममकार विन, राग रोष भय हीन ।
अवपु अमूढ़ अदोष यह, अन आलंव शुध चीन ॥ ४३ ॥

निशल निराग निरग्रन्थ, विन सव दोष अकाम ।
क्रोध मान मद रहित जिय, जानो शुद्ध मुकाम ॥ ४४ ॥

दशा नर नारि नपुंशी, फरश वरण रस गंध ।
संस्थान सहननहु नहो, ये न शुद्ध जिय धंध ॥ ४५ ॥

अशब्द अरूप अगन्ध जु, अरस चेतना खान ।
अक्ष अकार प्रगट ना, नहि निर्देशन थान ॥ ४६ ॥

सिद्ध समान जु जानिये, जिया जगत में सिद्ध ।
लख जनम जरा मरण विन, सहित आठ गुण सिद्ध ॥ ४७ ॥

अविनाशी निर्मल विशुध, सिद्ध देह विन जान ।
लोकाग्र तिष्ठें सदा, तिम जिय नियत पिछान ॥ ४८ ॥

ये भाव व्योहार से, कहे सु सकल सुजान ।
निश्चय सव जग जियन को, शुध लख सिद्ध समान ॥ ४९ ॥

भाव कथित पूरव सकल, हैं पर दरव सुभाव ।
त्याग योग सव जान वे, निज आतम चित लाव ॥ ५० ॥

सरधा विन विपरीतता, समकित सोई ज्ञान।
संशय विमोह विभ्रम जु, इन विन सम्यक ज्ञान ॥ ५१ ॥
विन चल मलिन अगाढ़ के, सरधा समकित भान।
हेय उपादे तत्व का, बोध सु सम्यक ज्ञान ॥ ५२ ॥
आगम समकित निमित है, बुध निमित अंतरंग।
कहा उपशम क्षयोपशम, दर्श मोह का भंग ॥ ५३ ॥
सुचरितहु शिव हेतु है, सहित समकित सुज्ञान।
चारित विवहार निश्चय, सो अब करूँ वखान ॥ ५४ ॥
हो विवहार तप चारित, वने जु नय विवहार।
नय निश्चय से जानिये, निश्चय तप आचार ॥ ५५ ॥

अथ व्यवहार चरित्राधिकार

थान योनि कुल मार्गना, जीव समास लखादि।
भाव आरंभ तजन तिन, वरत अहिन्सा आदि ॥ ५६ ॥
राग द्वेष वा मोह से, तजे झूँठ परिणाम।
सो सज्जन दूजा धरै, वरत सत्य अभिराम ॥ ५७ ॥
ग्राम नगर वा वन विषै, वस्तु पड़ी जो और।
गहण भाव सज्जन तजै, तीसर वरत अचोरि ॥ ५८ ॥
नारि रूप लख तासु में. निवरे वान्छा भाव।
मैथुन रहित परिणति करे, वरत विरम चतु गाव ॥ ५९ ॥

तजे परिग्रह जो सकल, सहित भाव विन वांछ।
वरत पांचवा साधु का, चारित धर विन लांछ॥ ६० ॥

दिवस प्रासुक मार्ग में, हाथ चार अवलोय।
करै साधु विहार जवै, ईर्याधारी सोय॥ ६१ ॥

स्व परशंस परनिन्द तज, पैशुन हास्य कठोर।
हित वोले पर आप मय, भाष समिति सव ठोर॥ ६२ ॥

कृत कारित अनुमोद विन, गह समता शुध भोज।
ग्रही भक्तिकर देय शुभ, समिति एषना खोज॥ ६३ ॥

उठाय धरे कमन्डला, पीछी पुस्तक आदि।
भाव सु यत्नाचार के, चतुर समिति कर यादि॥ ६४ ॥

गूढ़ अन्य रोके न जहँ, रहित जन्तु शुभ थान।
मुनि मोचे मल मूत्र को, समिति पाँचवी जान॥ ६५ ॥

कालश मोह अभिलाषा, राग द्वेष नहि जाग।
मन गुप्ति व्यवहार से, अशुभ भाव का त्याग॥ ६६ ॥

चोर, भोजन, भूप, तिया; देय पाप कथ छोर।
वच गुपति अलीक निवृति, मुनो धरें सव ठोर॥ ६७ ॥

छेदन मारन सकोचन, बन्धन अर विस्तार।
तन की किरिया ना करें, काय गुपति चितधार॥ ६८ ॥

जानो निश्चय मन गुपति, दिल रागादिक दूर।
कहे न असत मोन धरें, वाग गुपति उस पूर॥ ६९ ॥

तन से ममत निवारके, सब किरिया दे त्याग।
वा विरता सब हिन्स से, काय गुपति चित पाग ॥ ७० ॥

गुण बहुते केवल सहित, घाति करम विन होय।
तीस चार अतिशय धरें, जिन अरहंत सु जोय ॥ ७१ ॥

बंध करम अठ छेद के, सहित परम गुण आठ।
रहें नित लोक शिखर पर, ये सिद्धन के ठाठ ॥ ७२ ॥

पन्चेन्द्री हरि दर्प दल, पालें पन्चाचार।
धीर वीर आचार्य नित, गुण गंभीर अपार ॥ ७३ ॥

तत्व उपदिशै जिन कथित, त्रय रतना गुणधार।
इच्छा रहित भाव सहित, उपाध्याय गुण भार ॥ ७४ ॥

चो आराधन लीन नित, रहित सर्व वेपार।
निर्मोही निरग्रन्थ जु, होंय साधु अनगार ॥ ७५ ॥

कथन उक्त विवहार से, चारित किया वखान।
कहुँगा अब नय नियत से, चारित गुण वरधान ॥ ७६ ॥

अथ निश्चय प्रतिक्रमणाधिकार

हूँ न तिरयन्च देव नर, धारी नारक भाव।
करूँ कराउ इने न मैं, ना अनुमोदहि राव ॥ ७७ ॥

रूप थान गुण मार्गना, नाही जीव समास।
करूँ कराउ न भाव इन, नहि अनुमोदहुँ जास ॥ ७८ ॥

हूँ न युवक बाल वृद्ध, ना कारण परयाय ।
करूँ कराउ इने न मैं, ना अनुमोदहि राय ॥ ७९ ॥
नहि रूप मोह राग रुप, ना कारण उन भाव ।
करूँ कराउ इने न मैं, ना अनुमोदहि राव ॥ ८० ॥
नाहि रूप मैं क्रोध को, माया मद लोभाय ।
करूँ कराउ इने न मैं, ना अनुमोदहि राय ॥ ८१ ॥
मध्यस्थ हो इम भेदवल, लह चारित उन जोय ।
है तसु निमित दृढ़करण, कहुँ पड़कूना सोय ॥ ८२ ॥
वचन रचना त्याग मुनी, दें रागादि निवार ।
आत्म ध्याते ही तहाँ, पडकूना सुखकार ॥ ८३ ॥
मुखतः तजे विराधना, आराधें निज रूप ।
प्रतिक्रमण मय होय कर, हो मुमुक्षु तत्रूप ॥ ८४ ॥
अनाचार तज भव्य जो, थिर हो निज आचार ।
प्रतिक्रमण मय होय कर, तत्सरूप सुखकार ॥ ८५ ॥
तज उन्मग जिन मार्ग में, करे स्थिर निज भाव ।
कहें भावहि पड़कूना, पड़कूना जिय गाव ॥ ८६ ॥
शल्य भाव तज निशल मय, परिनावत मुनि भाव ।
कहें भावहि पड़कूना, पड़कूना जिय गाव ॥ ८७ ॥
होय सुगुप्त तिगुप्त में, तज अगुप्ति के भाव ।
कहें भावहि पड़कूना, पड़कूना जिय गाव ॥ ८८ ॥

आर्त रौद्र को छाँड़ के, धर्म शुकल दे योग।
होय उसहि प्रतिक्रमण, आगम वरने जोग॥ ८९॥
मिथ्यात्वादि सेये जिय, अनादि पूरव काल।
सम्यक्तादि सेये नहि, पूरव अवलग वाल॥ ९०॥
ज्ञान दर्श चारित्र तज, मिथ्या मय सव जोय।
तिय रतनहि भावे सदा, पड़कूना मय होय॥ ९१॥
है उत्तमार्थ आत्म ही, हने करम थिर होय।
ध्यानहि मुनि उत्तमार्थ है, जो पड़कूना जोय॥ ९२॥
मुनि लवलीन ध्यान में, दें सव दोष तजाय।
प्रतिक्रमण सव दोष को, ध्यानहि एक कराय॥ ९३॥
कहा सूत्र प्रतिक्रमण, जिम पड़कूना जोय।
यथा लख, भावहु यथा; तव पड़कूना होय॥ ९४॥

इति निश्चय प्रतिक्रमणाधिकार

अथ निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार

तज वच जाल, दूर भावि; कर्म शुभाशुभ भाव।
जो धियावे आतमहि को, प्रताखान चित लाव॥ ९५॥
शक्ति दर्शण ज्ञान सुख, है केवल मुझ रूप।
हूँ वहि, सुकेवल सुभाव; भावे इम शिव भूप॥ ९६॥

कभूँ न छोंड़े भाव निज, गहे न पर के भाव ।
देखत जानत सर्व को, चिन्तो मैं वहि राव ॥ ९७ ॥
प्रकृति थिति अनुभाग विन, रहित बंध प्रदेश ।
सोहम् यों बुध चिन्तता, भाव करे थिर भेप ॥ ९८ ॥
ठहरूं निर्मम भाव में, तज ममता के भाव ।
निज आलम्बन निज नियत, अवरा करूँ अभाव ॥ ९९ ॥
निश्चय आतम जानिये, चारित दरशन माँहि ।
ज्ञान उपयोग संवरा, प्रत्याखानहुँ ठाँहि ॥१००॥
जीव एकला ही करे, जनम मरन जग माँहि ।
मरेजु आपहु एकला, छूट करम सिध ठाहि ॥१०१॥
ज्ञान दर्श लक्षण धरे, आतम मम अविनास ।
भाव बाहर भाव शेप, चिन संयोगी जास ॥१०२॥
सव जोहु मम दुष्चरित, त्यागूं मन वच काय ।
तिभेद सामायिक करूं, निराकार सव भाय ॥१०३॥
साम्य भाव सव जीव से, वैर भाव ना काव ।
आशा त्याग, निश्चय कर; लहुँ समाधि के भाव ॥१०४॥
विन कषाय इन्द्रिय दमक, योधा उद्यमवान ।
प्रत्याखान तसु सुख मय, जग जाहि भय थान ॥१०५॥
इम विधि भेद अभ्यास जु, करे जीव कर्मान ।
सोहि संयमी जग धरै, नित सत प्रत्याखान ॥१०६॥

इति निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार

अथ निश्चय आलोचनाधिकार

विन दरव करम नोकर्म; गुण परयाय विभाव ।
हो आलोचन मुनिवरा; ध्यावे आतम राव ॥१०७॥

आलोचन, आलुन्छना, अविकृति करण थाय ।
भाव शुद्धि भेद चोविधि, आगम कही जु गाय ॥१०८॥

समता में निज भाव धर, देखे आतम सोय ।
होय ताहि आलोचना, कही जु जिनवर जोय ॥१०९॥

अष्ट करम तरु मूल को, सहजहि करे विनास ।
आतमाधीन सम भावहि, जिन आलुन्छन भास ॥११०॥

निश्चय जान कर्म भिन्न, निर्मल गुण की खान ।
भावे आतम समभावहि, करण अविकृति जान ॥१११॥

लोभ माया मान मदन, विन कषाय जे भाव ।
भाव शुद्धि केवलि कही, भव्य जीव हित लाव ॥११२॥

इति निश्चय आलोचनाधिकार

अथ निश्चय प्रायश्चिताधिकार

संयम समिति शील व्रत, इन्द्री जय के भाव ।
प्रायश्चित संज्ञा कही, करन जोग नित राव ॥११३॥

क्रोधादि निज विभाव का, क्षय करन का चाव ।
निजातम गुण चिंता धरे, कहा प्रायश्चित भाव ॥११४॥

क्राध क्षमा, मान मार्दव, माया आर्जव भाव ।
मुनि इम चतु कषाय जये, लोभ तोप के चाव ॥११५॥

परम बोध ज्ञान चित्त, आपहि आतम जोय ।
तिन धारे नित मुनिवरा, उनहि प्राश्चित होय ॥११६॥

मुनिवर परम तपश्चरण, एक प्राश्चित जान ।
हेतु नाशक विविध कर्म, किम वहु करें वखान ॥११७॥

बांधे जु शुभाशुभ कर्म, भव सु अनन्तानंत ।
ते खपाँय सव तप वला, सो प्राश्चित तप संत ॥११८॥

निज सरूप अवलंव में, तन्मय करे जु भाव ।
हो शक्य परभाव तजन, ध्यानहि यों सव राव ॥११९॥

वच रचना तज शुभाशुभ, रागादिक दे टार ।
आतम ध्याय तहि के, नियम नियम सव कार ॥१२०॥

कायादिक पर दरव में, स्थिर भाव को त्याग ।
ध्यावे आत्म अविकल हो, कायसर्ग उस लाग ॥१२१॥

इति निश्चय प्रायश्चिताधिकार

अथ परम समाधि अधिकार

तजे वचन का बोलना, सहित राग विन राग ।
ध्यावे पुनि जो आतम को, परम समाधि सु लाग ॥१२२॥

ध्यान धर्म वा शुक्ल वल, संयम निमय तपादि ।
ध्यावे आतम आपकी, परम समाधि सु लादि ॥१२३॥

समता विन समरथ नही, तन कलेश उपवास ।
ग्रन्थ पठन अर मौनि मुनि, करना वन का वास ॥१२४॥

जो विरता सावद्य से, धरे गुपति पुनि तीन ।
निज इन्द्री संकोचता, सामायिक थिर चीन ॥१२५॥

सर्व जिय त्रस थावरा, धरे जु समता भाव ।
थिर सामायिक होय तसु, इम जिन आगम गाव ॥१२६॥

संयम नियम तप करतहु, होय आत्म चित चाव ।
थिर सामायिक होय तसु, इम जिन आगम गाव ॥१२७॥

जासु होय न विकार मय, राग रोष के भाव ।
थिर सामायिक होय तसु, इम जिन आगम गाव ॥१२८॥

आर्त रौद्र मय भाव जु, उन नित करे अभाव ।
थिर सामायिक होय तसु, इम जिन आगम गाव ॥१२९॥

जिया जो तज देय सदा, पुण्य पाप के भाव ।
थिर सामायिक होय तसु, इम जिन आगम गाव ॥१३०॥

हास्यादि नव कषाय सों; रहे नित्य जो दूर ।
थिर सामायिक होय तसु, कहे जिन आगम पूर ॥१३१॥

धर्म शुक्ल ध्यानहि जो, ध्यावे नर जित कोय ।
थिर सामायिक होय तसु, कहे जिन आगम जोय ॥१३२॥

इति परम समाधि अधिकार

अथ परम भक्त्याधिकार

समकित ज्ञान चरण हो, गृही श्रमण सु भाव ।
जगमोचक भक्ति तिन्हैं, कही जिनागम गाव ॥१३३॥

सिद्ध गुण भेद जानके, परम भक्ति गुण जोय ।
सिद्ध भक्ति विवहार से, कहे जिनागम सोय ॥१३४॥

थिर थापे निज शिव मगा, करे भक्ति निरवान ।
तसु वल लहे आतम, जिया; गुण असहाय अमान ॥१३५॥

योग संजोय आप मुनि, तज रागादि विकार ।
योग भक्ति कर जान तसु, अन्य योग किम धार ॥१३६॥

सर्व विकल्प अभाव में, करे आतम मुनि लार ।
योग भक्ति कर जान तसु, अन्य योग किम धार ॥१३७॥

तज अभिप्राय विपरीत, जिनमत पद कर योग ।
सोहि आतम निज भाव है, कहें ताहि को जोग ॥१३८॥

की परम भक्ति जोग की, चारवीस जिनदेव ।
शिव सुख तिन तासों लहा, परम भक्ति तुम भेव ॥१३९॥

इति परम भक्त्याधिकार

अथ निश्चय आवश्यकाधिकार

होय आवशक कर्म तसु, परवश रहे न जोय ।
कर्म नाशन समरथ यह, शिव मग कहें सु लोय ॥१४०॥

जो न परवश अवश कहा, अवश आवशक जान ।
युक्ति उपाय अवयव यह, निवयव निरुक्ति मान ॥१४१॥

होय अन्य वश साधु जो, भाव अशुभ निज खाँपि।
कर्म आवश्यक यातें, होय न साधु कदापि ॥१४२॥

होय अन्यवश संयमी; शुभ भाव, सु निज खाँपि ।
कर्म आवश्यक यातें, होय न साधु कदापि ॥१४३॥

हो परवश चित चिन्तता, द्रव षट गुण परयाय ।
मोह तिमिर रहित श्रमण, सदा कहें समझाय ॥१४४॥

ध्यावे सु पर भाव तज, आतम शुद्ध सुभाव ।
निश्चय आतम वश जानहु, होय आवशक राव ॥१४५॥

कर सुभाव निज भाव थिर, चाह आवशक जोय ।
होय संपूरण इसहि कर, गुण सामायिक तोय ॥१४६॥

साधु करे न आवश्यक, जानो चारित हीन ।
होउ पूरव कथित क्रम, नित आवश्यक लीन ॥१४७॥

यति आवश्यक कर्म सह, कहा जु अंतर आतम ।
हीन उक्त क्रिया मुनी, जान ताहि वहिरात्म ॥१४८॥

नोट—अवयव–पर द्रव्य से रहित पना ही निरवयव याने काय रहित पना–अकाय हो जाता है ऐसी निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति है ।

बहिर सरूप न चिन्तता, वर्तें जल्प मझार ।
अन्तर वहि अन्तर जल्प, रहे न कोऊ कार ॥१४९॥

ध्यान शुक्ल शुभ परिणामत, अन्तर आतम सुजान ।
मुनि वर्तें सुध्यान विन, वहिरा क्रिया वखान ॥१५०॥

थिर चारित क्रिया करे, प्रतिक्रमणादि रूप ।
ता मुनि के तिनसों वने, चारित महा अनूप ॥१५१॥

आलोचन प्रतिक्रमण, नियम प्रत्याखान ।
वचन मई ये होंन तें, स्वाध्यायहु ये जान ॥१५२॥

ध्यान सहित षडकूनादि, करिये शक्ति समान ।
जब लग वल नहि तवलगा, कर अवश्य सरधान ॥१५३॥

सुविधि परख आगम सोंह, षड़कूनादिक रूप ।
धरे मौन सहित प्रगट, मुनि साधे निज रूप ॥१५४॥

नाना जीव रु कर्म है, लब्धिहु नाना जीव ।
वरजो वचन विवाद इम, निज पर धरम सदीव ॥१५५॥

भोगे गुपत सुभूमि में, ज्यों दारिद धन पाय ।
लह वुध भोगे ज्ञान निधि, सव पर दरव तजाय ॥१५६॥

इसहि विधि धर आवश्यक, पूरव सवहि सुजान ।
अठ वारा गुण-थान लह, पाया केवल ज्ञान ॥१५७॥

इति निश्चय आवश्यकधिकार

नोटः—जल्प—वचन रचना जिसके अतरंग और वाह्य दो भेद होते है ।

अथ शुद्धोपयोगाधिकार

केवलि सब जाने लखे, कथन यह व्यवहार।
नियत नय निज सरूपको, लख लखात सब कार ॥१५८॥

सूर प्रताप आताप, वर्ते जिम इक साथ।
ज्ञान दर्शन केवल तिम, संग केवली नाथ ॥१५९॥

निचय स्वपर प्रकाशी; मानत, कहत अयान।
पर परकाशक ज्ञान है, दर्शन आतमहि जान ॥१६०॥

परहि पिकासे ज्ञान जो, ज्ञान दर्श हों भिन्न।
कथन इस विधि होय तवै, दर्श लखे ना अन्न ॥१६१॥

पर परकाशहि आतम जो, दर्श आतम हो भिन्न।
कथन इस विधि होय तवै, दर्श लखे न अन्न ॥१६२॥

पर परकाशे ज्ञान जिम, जान दरप विवहार।
अर पिकासे पर आतमहु, दर्श अनित उनहार ॥१६३॥

निज परकाशे ज्ञान जिम, दर्श नियत से जान।
आतम प्रकासे आपहु, निश्चय दर्श पिछान ॥१६४॥

निज सरूप केवलि लखे, लखे न लोका लोक।
सकें न दें दूषण कथक, कहे सु इम विधि घोक ॥१६५॥

मूर्त अमूर्त जिय अजीव, दरव सरव पर आप।
लखे सुज्ञान अतिन्द्रिय, प्रत्यक्ष सवहि माप ॥१६६॥

[illegible] गुण परयाय सह, उक्त दरव सव सोय ।
सुविधि नाहिं जो देखता, दीठ परोक्ष सुहोय ॥१६७॥

लखे केवली जग अजग, पै नहि निज को जोय ।
दोष कहेहू ना वने, इम विवहारी सोय ॥१६८॥

ज्ञान, जीव स्वरूप है; आत्म आत्म इम जोय ।
जो जाने ना आत्म को, विलग होय तसु सोय ॥१६९॥

ज्ञान अर आत्म एक है, संशय का नहि काम ।
स्वपर प्रकाशक ज्ञान जु, दर्शणहू इम ठाम ॥१७०॥

लखें न जाने केवली, इच्छा सहित सुजान ।
केवलज्ञानी, है इविधि; बन्ध रहितहू भान ॥१७१॥

वन्धन कारण जानिये, वचन सहित परिणाम ।
मन परिणति विन वचन इम, ज्ञानी बंध न ठाम ॥१७२॥

बध कारण सइछ वचन, निरइछ नाही जान ।
तातें बन्ध न केवली, लेहू सकल पिछान ॥१७३॥

चलना, रुकना, बैठना; अनइछ केवलि जोय ।
तातें बन्ध न केवली, पै मोही के होय ॥१७४॥

आयू के क्षय होत ही, शेष करम हों नाश ।
जिया इक समय में करे, लोक शिखर में वास ॥१७५॥

शुध जनम जरा मरण विन; परम, करम अठ दूर ।
अछेद अविनाशी अछय, चतु सुभाव कर पूर ॥१७६॥

अव्यावाध अतीन्द्रिय, अनुपम विन पुण पाप ।
नित्य अविचल अनालम्ब, विन अवतारहु माप ॥१७७॥
नाहि पीड़ा सुक्ख दुक्ख, वाधा का नहि काम ।
है न जन्म मरणहु जहां, ताही का शिव नाम ॥१७८॥
है न उपसर्ग इन्द्रिय, अचरज निद्रा मोह ।
क्षुधा तृपाहु नहि जहां, सोही शिव अवलोह ॥१७९॥
द्रव्य कर्म नो कर्म ना, ना आरत अर चिन्त ।
धर्म शुकल रोद्रहु नही, हो तव ही शिव मिन्त ॥१८०॥
केवल दर्शन ज्ञान सुख, वीरज सिद्ध सुजान ।
सप्रदेशी अमूर्त है, असितत भाव पिछान ॥१८१॥
निर्वाण ही सिद्ध कहा, सिद्ध जीव निर्वाण ।
हो करम रहित आत्म जो, अग्रलोक में थान ॥१८२॥
जानूं जिय पुदगल गमन, धर्म दरव के थान ।
सकें न जाँय अभाव में, रंच न ऊपर भान ॥१८३॥
नियम नियम के फल कहे, प्रवचन भक्ति वसाय ।
पूर्वापर विरोध जहां, ज्ञानी लेय सुधाय ॥१८४॥
निन्दे ईर्षा भाव से, सुन्दर मग को जोय ।
करो न अभक्ति वचन सुन, जिन मारग शिप सोय ॥१८५॥
पूर्वापर विरोध रहित, समझ सु जिन उपदेश ।
आत्म भाव के निमित ही, नियम रचा शुभ देश ॥१८६॥

इति मूल ग्रन्थ समाप्तः

कवि-विनय

अतुल उपकार गुरु किया, रच सु पाहुड़ ग्रन्थ।
अब हूँ तीरथ वीर वत, चमक रहा शिव पन्थ ॥५॥

महिमा आतम देव की, जान करे जो सेव।
तारन तरन कहाय वह, हो देवन का देव ॥६॥

ज्ञानी मूलशंकर वहु, ब्रह्मचारी गुजरात।
ज्ञान तिन संयोग वढ़ा, कह 'सागर' किस भाँत ॥७॥

वार वार प्रेरित करें, देश 'देश से सोय।
रचो सुकवित पाहुड़ा, निज पर हित वहु होय ॥८॥

सो रचना पूरी वही, शुकल पोष षट रात।
साल चौदह दोय सहस, वर विक्रम की आत ॥९॥

'सागर' ने रचना रची, लश्कर नगर मझार।
चूक टाल बुध गटकिये, शुध सरूप सव कार ॥१०॥



समाप्त